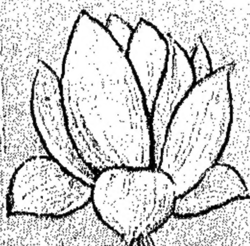
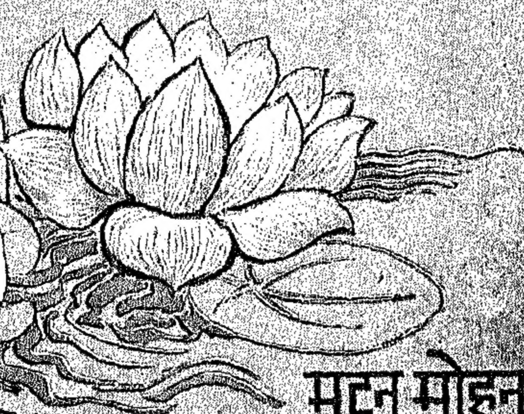
साहित्य परिचय





मदन मोहन शर्मा,
एम. ए., साहित्यरत्न

राष्ट्र भाषा प्रचार समिति, वर्धा

साहित्य-परिचय

लेखक

मदन मोहन शर्मा

अेम. अे., साहित्यरत्न



प्रकाशक

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

प्रकाशकः—

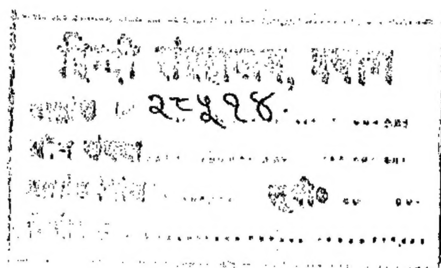
मन्त्री

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति,

हिन्दीनगर, वर्धा

प्रथम संस्करण
फरवरी, १९५४

मूल्य
अेक रुपया



मुद्रकः—

मोहनलाल भट्ट

राष्ट्रभाषा प्रेस,

हिन्दीनगर, वर्धा

प्रकाशकीय वक्तव्य

'राष्ट्रभाषा कोविद' परीक्षाके परीक्षार्थियोंके लिअे साहित्यके सभी अुपादानोंका सांगोपांग विवेचन सरल भाषामें प्रस्तुत करनेकी समितिकी बहुत दिनोंसे अिच्छा थी। हर्षका विषय है कि यह अिच्छा अिस पुस्तकके रूपमें अब पूर्ण हो रही है।

समिति परिवारके श्री मदनमोहन शर्मा, अेम. अे., साहित्य-रत्नने अिस पुस्तकको तैयार किया है तथा नागपुर युनिवर्सिटीके हिन्दी-विभागके अध्यक्ष श्री विनयमोहनजी शर्माने अपना अमूल्य समय देकर पुस्तकको आद्योपान्त देखा और यथास्थान अुचित परामर्श भी दिया तथा पुस्तकके अुपयुक्त सुंदर प्रस्तावना लिख देनेकी भी अुदारता दिखाअी अतः समिति अुनके प्रति आभारी है।

आशा है राष्ट्रभाषाके विद्यार्थियों तथा साहित्यके अन्य जिज्ञासुओंके लिअे यह पुस्तक अवश्य अुपयोगी सिद्ध होगी।

मंत्री,

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

लेखककी ओरसे

साहित्यको पूरी तरहसे समझनेके लिअे अुसके सभी अुपादानोंको समझना भी आवश्यक है। राष्ट्रभाषा कोविदके विद्यार्थी जो साहित्यकी देहरीपर खड़े होकर अुसके विशाल भवनमें झाँकनेका प्रयत्न करते हैं, अुन्हें साहित्यका रूप दिखानेकी दृष्टिसे ही अिस पुस्तककी रचना की गअी है।

साहित्यके अंतर्गत आनेवाले कविता, कहानी, अुपन्यास, नाटक, निबन्ध, समालोचना आदि सभी अुपादानोंके अंगोपांगोंका परिचयात्मक विवेचन सरल भाषामें करनेका ही यह प्रयत्न है। विषयकी दृष्टिसे 'कोविद'के विद्यार्थियोंकी आवश्यकताको ध्यानमें रखते हुअे अिसमें जानकारी देनेका प्रयत्न किया गया है।

राष्ट्रभाषाके अध्येताओं तथा अध्यापकोंका पुस्तककी जो कमियाँ खटकें अुनके विषयमें वे सहर्ष लेखक या प्रकाशकको लिख सकते हैं। अुनके सुझाओंका सादर स्वागत किया जाअेगा।

लेखक अुन सभी विद्वानोंका आभारी है जिनकी कृतियोंका अुपयोग जाने अथवा अनजानेमें अिस पुस्तकके तैयार करनेमें किया गया है। आदरणीय गुरुवर पं. विनयमोहनजी शर्माका भी लेखक हृदयसे आभारी है जिन्होंने अपने अमूल्य परामर्शोंसे तथा सुन्दर प्रस्तावना लिखकर लेखकके अुत्साहको बढ़ाया है। राष्ट्रभाषा प्रेसके व्यवस्थापक तथा मित्रवर श्री आनन्द माधव मिश्र बी. अे., विशारदका भी लेखक कृतज्ञ है जिनके सहयोग बिना पुस्तक अिस रूपमें न आ पाती।

विनीत–

मदनमोहन शर्मा

प्रस्तावना

'साहित्य-परिचय' राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिकी राष्ट्रभाषा-कोविद परीक्षाके विद्यार्थियोंके लिअे लिखी गअी साहित्य-शास्त्रकी अेक कृति है। अिसमें साहित्यके विभिन्न अंगोंके शिल्पों और अुपादानोंको सरल भाषामें समझाया गया है। साहित्य-शास्त्रपर आअे दिन पुस्तकें प्रकाशित होती रहती हैं जिनकी प्रतिपादन-शैली और विषयका विस्तार प्रायः दुरूह और जटिल होते हैं। अैसे ग्रंथोंको पढ़नेमें विद्यार्थियोंका अुत्साह मंद हो जाता है। प्रस्तुत पुस्तक अिन दोनों अतिवादोंसे मुक्त है। परीक्षार्थियोंके अतिरिक्त साहित्यके सामान्य जिज्ञासु पाठक भी अिससे लाभान्वित हो सकते हैं। साहित्यके मर्मतक पहुँचाने और अुसमें निहित कला-सौंदर्यसे साक्षात्कार करानेमें अिस पुस्तकका अध्ययन विशेष सहायक हो सकता है।

स्पष्ट है कि अिस पुस्तकमें असामान्य किसी साहित्य-सिद्धांतको प्रस्तुत नहीं किया गया है और यह अुसका अुद्देश्य भी नहीं है। साहित्यको सर्वसाधारणके लिअे बोधगम्य बनानेमें ही अिसकी अुपयोगिता है और अिस कार्यमें लेखकको निर्विवाद रूपसे सफलता प्राप्त हुअी है। अतअेव वह साधुवादका पात्र है।

नागपुर महाविद्यालय,
नागपुर, १७-१-५४

विनयमोहन शर्मा
अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग

अनुक्रमाणिका

साहित्य

साहित्यकी परिभाषा

साहित्यको किसी अेक निश्चित परिभाषा द्वारा समझना अत्यन्त कठिन है। फिर भी भिन्न-भिन्न लेखकोंने अपने-अपने ढंगसे अिसकी परिभाषा बतानेका प्रयत्न किया है। संस्कृतके अेक महान् पंडित राजशेखरने अिसकी व्याख्या करते हुअे लिखा है [1]'**शब्द और अर्थका यथायोग्य सहयोगवाली विद्या साहित्य विद्या है**।'शब्द-कल्पद्रुम नामक अेक ग्रंथमें साहित्यकी व्याख्या करते हुअे अुसे [2]'**श्लोकमय ग्रंथ**' कहा गया है। रवीन्द्रनाथ ठाकुरने साहित्य संबंधी अपने विचारोंको अिस प्रकार व्यक्त किया है '**साहित्य शब्दसे साहित्यके मिलनेका अेक भाव देखा जाता है। वह केवल भाव-भावका, भाषा-भाषाका, ग्रंथ-ग्रंथका ही मिलन नहीं बल्कि मनुष्यके साथ मनुष्यका अतीतके साथ वर्तमानका दूरके साथ निकटका अत्यन्त अंतरंग मिलन भी है जो कि साहित्यके अतिरिक्त अन्यसे सम्भव नहीं है।**'

अिसमें संदेह नहीं कि साहित्य सम्मिलन ही का फल है। मनुष्य अेक ही जन्ममें नहीं किन्तु अनेक जन्मोंमें अेक दूसरेसे मिलते हैं और अुनके

---

[1]शब्दार्थयोर्यथावत्सह भावेन विद्या साहित्य विद्या।

[2]मनुष्य कृत श्लोकमय ग्रंथ विशेषः साहित्यम्।

विचारोंका आपसमें आदान-प्रदान होता है। विचारोंका होनेवाला यह आदान-प्रदान ही बादमें साहित्यका रूप धारण कर लेता है। अिस तरह विचारोंके सम्मिलनका नाम साहित्य है। कुछ लोग साहित्यमें हितका भाव अधिक मानते हुअे साहित्यका जन हितकारी (हितके साथ जो हो, वह साहित्य) बताते हैं। साहित्यका क्षेत्र भी बहुत विस्तृत है। किसी अेक साहित्य मर्मज्ञका कथन है कि '**साहित्य राष्ट्रके व्यापक मानसिक जीवनका निचोड़ है।**' किसी भी देशके साहित्यको पढ़ लेनेपर अुस देशमें रहनेवालोंकी विचार-धारा, रहन-सहन तथा अुनकी संस्कृतिके विषयमें जानकारी प्राप्त हो जाती है। अिसीलिअे साहित्यको '**समाजका प्रतिबिम्ब**' भी कहा जाता है। साहित्यको और भी स्पष्ट रूपसे समझनेके लिअे हम यों भी कह सकते हैं कि '**साहित्य युग-युगके मानसिक अनुभवोंका प्रतिबिम्ब है।**' मनुष्य अभी तक जो भी सोचता और समझता आया और अपने प्रतिदिनके जीवनमें व्यक्तियोंसे विचार-विनिमयके बाद अुसने जो सीखा, अनुभव प्राप्त किअे अुसे साहित्यके खजानेमें सुरक्षित रख दिया। कहनेका तात्पर्य यह कि साहित्यमें हमें सब कुछ मिलता है ज्ञान-विज्ञान, समाज-शास्त्र, भौतिक तथा रसायन-शास्त्र, अितिहास, दर्शन तथा राजनीति आदि। '**जीवनकी विभिन्न अनुभूतियों, भावनाओं तथा आदर्शोंकी अभिव्यक्तिका लिपिबद्ध रूप ही साहित्य कहा गया है।**'

साधारण बोलचालकी भाषामें आजकल 'साहित्य' शब्दका अर्थ बड़ा व्यापक है। दवाओके विज्ञापन, न्यायालयके सूचना-पत्र या दीवालपर चिपकाये गअे किसी विषयके पोस्टरसे लेकर गहनसे गहन विषयपर लिखे ग्रंथ आदि सभीको साहित्य कहा जाता है। परन्तु अिस व्यापक अर्थके अलावा अुसका अेक विशेष अर्थ भी है और यहाँ हमें अिसी विशेष अर्थपर विचार करना है।

साहित्य-शास्त्रका विद्यार्थी साहित्यके अंतर्गत केवल अुसी सामग्री को ग्रहण करता है कि जो अेक तो विषयकी दृष्टिसे किसी अेक विशिष्ट वर्ग या श्रेणीसे संबंधित न हो बल्कि सभी लोगोंकी रुचिसे सम्बन्धित हो और दूसरे वह आनन्ददायक अेवं कलात्मक हो। कहनेका तात्पर्य यह कि साहित्यका आनन्ददायक होना आवश्यक है और साथही जिस रूपमें वह हमारे सामने आता है वह कलात्मकभी होना चाहिअे। चूंकि साहित्यका प्रधान अुद्देश्य आनन्द है अिसीलिअे अुसे दूसरे शब्दोंमें काव्यकी भी संज्ञा दी गअी है।

साहित्य और विज्ञान

साहित्य और विज्ञानका भेद भी हमारे समझ लेनेकी चीज है। साहित्यका सीधा सम्बन्ध भावनाओं और कल्पनाओंसे होता है। साहित्य हृदयका विषय है; विज्ञान मस्तिष्कका, बुद्धिका। अिसका यह अर्थ नहीं कि विज्ञानको समझनेमें कल्पना और हृदयकी आवश्यकता नहीं होती और साहित्यको अथवा काव्यको समझनेके लिअे बुद्धिकी आवश्यकता नहीं होती। कहनेका तात्पर्य अितना ही है कि वैज्ञानिक तो वस्तुओंके रूप, आकार, रचना, गुण स्वभाव आदि पर विचार करता है। वह अुन कारणोंका भी पता लगानेका प्रयत्न करता है कि जिसके परिणाम स्वरूप अुसका यह रूप बना। पर-साहित्य अिन पचड़ोंमें नहीं पड़ता। सुन्दर वस्तु जिस रूपमें हमारे सामने है अुसकी अद्‌भुतता और सुन्दरतासे वह प्रभावित होता है और अुसके अुस सौंदर्य का वर्णन कर हमारे हृदयको भी प्रभावित करनेका प्रयत्न करता है।

कमलके फूलको देखकर कवि अनायास कह अुठता है '**ओह! कितना सौंदर्य है! कितनी मादकता और कितना आकर्षण है अिस पुष्पमें!**' कमल अुसे अपनी प्रेयसीकी बड़ी-बड़ी आँखोंकी याद दिला देता है, और अुसपर पड़ी हुअी ओसकी बूंदें अज्ञातके प्रति टपकते हुअे अश्रुओंकी भाँति प्रतीत होती हैं। वह अिस दृश्यको अपनी कल्पनाओंके सहारे अत्यंत सजीव बना देता है। पर वैज्ञानिक केवल मात्र अितना ही कह कर रह जाता है,

" यहाँ कुछ नहीं, केवल कुछ पत्ते, कुछ पंखुड़ियाँ, और रंग हैं, जो कुछ दिनोंमें उड़ जाअेंगे ! सब व्यर्थ और निस्सार ! "

परंतु अितना अवश्य सत्य है कि जीवनमें सत्यं-शिवं-सुंदरम्‌की स्थापनाके लिअे हमें दोनोंकी ही समान रूपसे आवश्यकता है।

यह हम देख चुके हैं कि **साहित्य** का वास्तविक अर्थ बतानेवाला शब्द **काव्य** हीहै। संस्कृतमें काव्यके अंतर्गत गद्य, पद्य और चम्पू (जिसमें गद्य और पद्य दोनों ही हों) ही लिअे जाते हैं। अतअेव कविता, कहानी, अुपन्यास, नाटक आदि सभी काव्यके अंग हुअे। कुछ लोग केवल कविताको ही काव्यके अंतर्गत मानते हैं पर अैसी बात नहीं है। काव्य शब्द साहित्यके सभी रूपोंके लिअे प्रयुक्त हो सकता है।

साहित्य और काव्य

भरत मुनि तथा आचार्य विश्वनाथने काव्यको [1]**'रसात्मक वाक्य'** कहकर रसको काव्यकी आत्मा माना है। दण्डी तथा भामहने अलंकारोंको काव्यकी आत्मा माना है। हिन्दीके आचार्य केशवदासने भी संस्कृतके अिन्हीं आचार्योंका समर्थन किया और कहा—

जदपि सुजाति सुलच्छणी, सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिनु नहिं राजअी, कविता, वनिता, मित्त॥

परन्तु यह ध्यान रखनेकी बात है कि अलंकारोंको प्रधान माननेवाले लेखक काव्यके मूलतत्व भावको भुला देते हैं और अलंकारोंके फेरमें पड़कर शब्दोंका जालमात्र रच डालते हैं।

रस-गंगाधर, नामक ग्रंथके लेखक पंडितराज जगन्नाथने [2]**' रमणीय अर्थके बतलानेवाले वाक्य'** को काव्य माना है।

---

[1]वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।

[2]रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।

चाहे अपने-अपने ढंगसे ही क्यों न हो अिन सभी आचार्योंने आनंद नामक काव्यके प्रधान रसकी महत्ता अवश्य स्वीकार की है।

मनुष्य स्वभावसे ही कुछ न कुछ करता रहना चाहता है। अुसके लिअे यह संभव नहीं कि वह चुपचाप बैठा रहे। अुसी तरह अुसके स्वभावकी अेक और विशेषता यह भी है कि वह अपने मनकी बात दूसरेपर प्रकट करना चाहता है। अपने विचारों और मनके भावोंको प्रकट करनेकी अुसकी अिच्छा हमेशा प्रबल रहती है। ये ही कारण हैं कि जिससे साहित्यका निर्माण होता है।

साहित्यका प्रयोजन

साहित्य सृजनके प्रयोजनको रवींद्र कवींद्रने अिन शब्दोंमें प्रकट किया है—

१. हमारे मनके भावकी यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह अनेक हृदयोंमें अपनेको अनुभूत कराना चाहता है।

२. हृदय-जगत् अपनेको व्यक्त करनेके लिअे आकुल रहता है। अिसलिअे चिर कालसे मनुष्यके भीतर साहित्यका वेग है।

३. बाह्य सृष्टि जैसे अपनी भलाअी-बुराअी तथा अपनी असंपूर्णताको व्यक्त करनेकी निरन्तर चेष्टा करती है वैसे ही यह वाणी भी देश-देशमें, भाषा-भाषामें हम लोगोंके भीतरसे बाहर होनेकी बराबर चेष्टा करती है। यही कविताका प्रधान कारण है।

प्राचीन आचार्योंके अनुसार काव्यका प्रयोजन '[1]**यश, अर्थ, व्यवहार ज्ञान तथा आनन्द अित्यादि अनेक फलोंकी प्राप्तिको माना गया है।**' परन्तु अनेक कवियोंने '**स्वांतः सुखाय**' (आत्म सुख, अपने ही सुखके लिअे) ही काव्यकी रचना की है। साधनाके फलस्वरूप अुच्च कोटियोंके कवियोंका यही स्वांतः सुख जनताका सुख अेवं लोक-कल्याण सिद्ध हुआ।

---

[1] काव्यं यशसेऽर्थ कृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः पर निवृत्तये कांता सम्मिततयोपदेशयुजे॥

'कला कलाके लिअे' या **'कला जीवनके लिअे'** अिसको लेकर भी साहित्य शास्त्रियोंमें बहुत दिनोंतक विवाद चलता रहा। **'कला कलाके लिअे'** के माननेवाले कलाको जीवनका निर्माण करनेवाली या चरित्रको बनानेवाली होना चाहिअे, यह नहीं मानते। परिणाम यह होता है कि अैसी कला मानव अेवं समाजके लिअे हानिकारक सिद्ध होती है। **'कला जीवनके लिअे'** यह सिद्धांत कलाको जीवनके अधिक निकट ला देता है और अिस सिद्धांतको माननेवाला कलाकार अेक निश्चित मर्यादा अथवा सीमामें चलकर जीवनको जहाँ सुंदर बना देता है वहाँ वह अुसमें शिव (कल्याण) की भी स्थापना करता है।

साहित्य और समाज

यह हम देख चुके हैं कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है। जहाँ वह समाजका अेक अंग होनेके कारण अपने चारों ओरकी सामाजिक परिस्थितियोंसे प्रभावित होता है वहाँ अपने विचारोंका भी वह समाजमें प्रचार करनेका प्रयत्न करता है। और अिस तरह समाजको बनानेका प्रयत्न करता है। आदि कवि वाल्मीकिने अपनी रामायणमें समाजकी अेक आदर्श व्यवस्थाको जनताके सामने रखा और यह बतलाया कि किस तरह अिसी पृथ्वीपर स्वर्गीय-सुखको लाया जा सकता है। तुलसीदासजीने भी तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियोंसे प्रभावित होकर रामका अेक कल्याणकारी आदर्श चरित्र जनताके सम्मुख रखा। और अपने आदर्शोंके अनुसार यह बतानेका प्रयत्न किया कि आदर्श पारिवारिक जीवन तथा सामाजिक जीवन किस तरहका होना चाहिअे। तुलसीद्वारा प्रस्थापित अिस आदर्शसे आजभी हम प्रेरणा पाते हैं। साहित्य और समाजके अिन्हीं संबंधोंको ध्यानमें रखते हुअे अेक विश्व साहित्यकारने कहा है कि **'कला और साहित्य मानव-जीवन के परे किसी स्वप्न-लोककी वस्तुअें नहीं, वे किसी अेकांत लोकमें विकास पा ही नहीं सकतीं।'**

साहित्यका समाजसे जो संबंध है अुसे ध्यानमें रखते हुअे हम साहित्यिकोंको तीन श्रेणियोंमें बाँट सकते हैं। अेक तो अैसे साहित्यकार जो प्रचलित

सामाजिक व्यवस्था अेवं मान्यताओंको ज्यों का त्यों स्वीकार कर लेते हैं। दूसरे वे जो समाजमें पाये जाने वाले दोषोंको धीरे-धीरे दूर करनेका प्रयत्न करते हैं। अैसे लोग समाजके विरोधमें अेक दम विद्रोह नहीं करते वरन् धीरे-धीरे सुधारकी भूमिका तैयार करते रहते हैं। और तीसरे अैसे साहित्यकार होते हैं जो क्रांति करके परिवर्तन करनेके पक्षमें होते हैं। ये साहित्यकार समाजके प्रचलित ढंगोंको अेकदम बदलकर अुसकी जगह अेकदम नअी व्यवस्थाको रखनेके पक्षमें होते हैं। किन्तु अितना तो अवश्य सत्य है कि कलाकारोंकी ये तीनों श्रेणियाँ अपनी प्रेरणा समाजसेही लेती हैं। अिनका यह विभाजन भी समाजके प्रति अपनाअे गअे दृष्टिकोणके आधारपर ही स्थित है।

साहित्य व्यक्तिगत भावनाओं और अनुभूतियोंका वर्णन होता है और यह स्वाभाविक ही है कि व्यक्ति अपने चारों ओरकी परिस्थितियों, जातिगत तथा समाजगत विशेषताओं आदिसे प्रभावित होता हो। अिन होनेवाले प्रभावोंकाभी परस्पर आदान-प्रदान होता रहता है। साहित्य अिसी आदान प्रदानके लिअे माध्यमका काम करता है और विभिन्नताके बीच भी अेक सूत्रताको कायम किअे रहता है। साहित्य और कला की अुन्नति देश और जाति की, सभ्यता अेवं अुत्कृष्टता की द्योतक है। साहित्यसे हमें अुस जातिके मानसिक और बौद्धिक विकासका ज्ञान हो जाता है। भारतीय साहित्यमें हम अुसकी सांस्कृतिक विशेषताका प्रत्यक्ष दर्शन पाते हैं। भारतीय साहित्यिकों और कलाकारोंने जीवनके विभिन्न तत्वों (आशा-निराशा, सुख-दुख आदि) में समन्वय स्थापित करनेका सतत प्रयत्न किया। आदर्शोंकी ओर अबाधगतिसे अग्रसर होनेका अमर संदेश हमारे साहित्यकार हमें सदैव देते आअे हैं और अिसका प्रधान कारण रहा है हमारे यहाँका आध्यात्म-प्रधान जीवन। अधर्म अेवं अन्यायके बीच हमारे साहित्यने सदैव धर्म अेवं न्यायकी ही विजय दिखाअी। अिसके साथ ही साथ हमारे यहाँके आचार्योंने

काव्य और नैतिकताके संबंधोंपर भी विचार किया है। परिणामतः अश्लीलता आदिको काव्यमें दोष ही माना गया है। अिस प्रकार नैतिक औचित्यको अुचित स्थान दिया गया है।

साहित्य और विज्ञानका भेद समझते समय हमने साहित्यमें भाव-पक्ष तथा कला-पक्षकी बातका थोड़ा जिक्र किया है। साहित्यके भाव-पक्षके अंतर्गत रसोंका विवेचन आता है। रस नौ माने गअे हैं। शृंगार, करुण, शान्त, रौद्र, वीर, अद्‌भुत, हास्य, भयानक और वीभत्स। कुछ साहित्यकार वात्सल्य रसको दसवाँ रस मानते हैं। अिन रसोंके संबंधमें विस्तृत चर्चा हम आगे करेंगे।

साहित्यके अन्तर्गत **विचारोंके प्रकट करनेके ढंग**का भी विचार किया जाता है। अिसीको **शैली** कहते हैं। भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंके साथ यह अपनी भिन्न-भिन्न व्यक्तिगत विशेषता लिअे हुअे रहती है। शैलीको समझनेका प्रयत्न करते हुअे अेक विश्व-साहित्यकारने अुसे अिस प्रकार समझाया है—'**भावोंकी अभिव्यक्तिके प्रकारको शैली कहते हैं।**' दूसरे शब्दोंमें '**किसी कवि या लेखककी शब्द योजना, वाक्यांशोंका प्रयोग, वाक्योंकी बनावट और अुसकी ध्वनि आदिका नाम शैली है।**' दूसरे अेक साहित्यकारने शैलीको अिन शब्दोंमें समझानेका प्रयत्न किया है—'**शैली विचारोंकी वेश-भूषा है।**'

शैली

शैली व्यक्तिगत विशेषता होनेके कारण कअी तरहकी होती है। किसी अवतरण, पाठ या लेखकी भाषाको पढ़ लेनेपर हम तुरंत बता देते हैं कि यह अमुक लेखकका लिखा हुआ होना चाहिअे।

शैलीका मुख्य आधार, भाषा है। भाषा शब्दोंसे बनती है। शब्दोंमें अेक विशेष प्रकारकी शक्ति होती है जो अुसमें निहित अर्थका द्योतक होती है। शब्द-शक्तियोंका यदि हमें पूरा ज्ञान न हो तो हम शब्दोंका वह अर्थ समझनेमें असफल रहेंगे कि जिस अर्थमें वह प्रयुक्त हुआ है अथवा लेखक अुसके जिस अर्थको प्रकट करना चाहता है। अतः शब्द शक्तिके संबंधमें भी हमें थोड़ी जानकारी होनी चाहिअे।

शब्द शक्तियाँ तीन हैं— **१. अभिधा २. लक्षणा** और **३. व्यंजना ।** **अभिधा** से शब्दके साधारण अर्थका बोध होता है । शब्दोंको सुनते ही यदि अुसके अर्थका बोध हो जाअे तो यह अुसकी अभिधा शक्तिका कार्य हुआ । अुदाहरणके लिअे हम गाय, मेज, आदमी, शेर आदि शब्दोंको ले सकते हैं । अिन शब्दोंके सुनते ही हमारे मनमें जो चित्र खड़ा होगा वह सभीके मनमें लगभग अेक सा ही होगा । गाय माने चार पैरका अेक अैसा पशु जो दूध देता हो, जिसके दो सींग हों, पूँछ हो आदि-आदि । अुसी तरह आदमी और शेर आदि शब्दोंसे विशिष्ट जीवोंका ज्ञान होगा । यह सर्वसाधारणतया कोष, व्याकरण तथा अिन शब्दोंका व्यवहार करनेवाले सर्व-साधारण लोगोंसे जाना जा सकता है । अतः यह अर्थ अभिधेय अथवा **वाच्यार्थ** कहलाअेगा और शब्दकी यह शक्ति **अभिधा शक्ति** कहलाअेगी ।

शब्द शक्तियाँ

शब्दके प्रधान या मुख्य अर्थको छोड़कर किसी दूसरे अर्थकी अिस-लिअे कल्पना करनी पड़े कि अर्थ ठीक बैठ जाअे वहाँ **लक्षणा** होती है ।

जब शब्दके अेकसे अधिक अर्थ होते हों और वाक्यके अर्थको ठीक समझनेके लिअे विशिष्ट अर्थको समझनेका प्रयत्न करना पड़े वहाँ लक्ष्यार्थ होता है और शब्दकी शक्ति **लक्षणा** कहलाअेगी जैसे—

"लाला लाजपतराय पंजाबके **शेर** थे ।" यहाँ निश्चय ही **शेर** शब्द अपने सामान्य अर्थमें प्रयुक्त नहीं हुआ है । आदमी शेर नहीं हो सकता । यहाँ शेर शब्दका अुपयोग करके अेक विशेष प्रकारका चमत्कार अुत्पन्न किया गया है । शेरसे यहाँ अर्थ है शेरके समान वीर, साहसी, निडर, निर्भीक । जब मुख्यार्थके साथ-साथ शब्दका और भी कोअी अर्थ प्रकट होता हो तो अुसे **लक्ष्यार्थ** कहते हैं ।

तीसरी शक्ति **व्यंजना** है । अभिधा और लक्षणा द्वारा व्यक्त होनेवाले अर्थके अलावा यदि और ही किसी अन्य अर्थमें शब्दका प्रयोग

किया गया हो तो अुसे **व्यंग्यार्थ** कहते हैं और जिस शक्तिके सहारे यह अर्थ निकाला जा सकता है अुसे **व्यंजना शक्ति** कहते हैं। यदि कोअी अेक मनुष्य किसी दूसरे मनुष्यसे कहता है कि **'तुम्हारे मुँहसे शठता झलक रही है।'** और अिसका अुत्तर यदि यह दिया जाअे कि **'मुझे आज ही जान पड़ा कि मेरा मुँह दर्पण है।'** अिस अुत्तरसे यह भाव निकला कि तुमने अपनी शठताकी झलक मेरे मुँह-रूपी दर्पणमें देख ली अर्थात् तुम स्वयं शठ हो, मैं नहीं।

व्यंजना में अेक ही अर्थसे दूसरा अर्थ निकाला जाता है। अब संध्या हो गयी अिसका वाच्यार्थ सरल है, साधारण है; किन्तु अिसका अेक मात्र यही अर्थ नहीं है। मजदूरोंके लिअे अिसका यह अर्थ है कि अब छुट्टीका समय हो गया, घरके लोगोंके लिअे यह कि दिया जलाया जाना चाहिअे और यदि कोअी पास बैठा हुआ तो अुसके लिअे यह कि महाराज! अब आप बिदा होअिअे।

व्यंजना और **लक्षणा** अैसी शक्तियाँ हैं जिनके कारण भाषामें अेक विशेष प्रकारका चमत्कार आ जाता है।

साहित्य वास्तवमें **'आत्माभिव्यक्ति'** ही तो है। साहित्यका अैसा कोअी अंग नहीं जिसमें साहित्यकारका अपना व्यक्तित्व छिपा न बैठा हो।

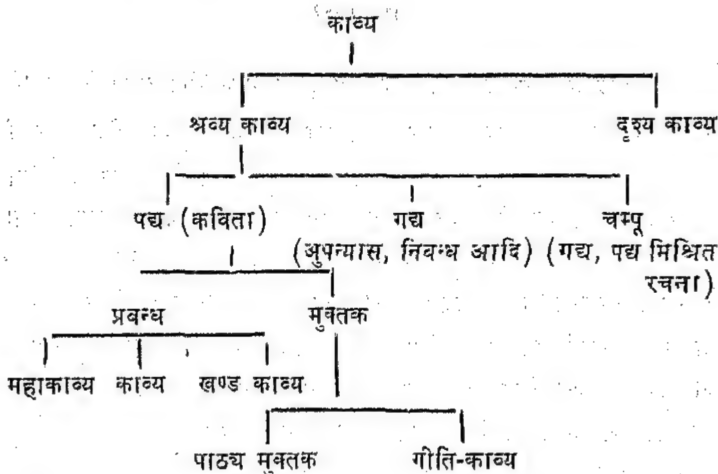
साहित्य और साहित्यकार

वह जीवनकी सांसारिक समस्याओंकी विवेचना अपने दृष्टिकोणके अनुसार करता है और अिसीलिअे किसी भी साहित्यकारकी कृतिको पूरी तरहसे समझनेके लिअे पहले अुसके व्यक्तिको समझना होता है।

वही साहित्य चिरंतन साहित्य कहलाया जा सकता है जिसमें निश्छल आत्माभिव्यक्ति हो और अुसका लिखनेवाला महान् व्यक्ति हो। महान् व्यक्तिके बिना महान् साहित्यकी रचना नहीं की जा सकती और साहित्यके महान हुअे बिना वह युग-युगका संदेश देनेवाला नहीं बन सकता।

अिस तरह हम यह देखते हैं कि [1]"साहित्य मुर्दा दिलोंमें नअी जान फूंक देता है, अिसलिअे वह आयुर्वेदिक रसका काम भी करता है। काव्यका सार है, अिसलिअे वह फलोंके रसकी अभिव्यक्ति है। आनन्द अुसका निजी रूप है, अिसलिअे वह परमार्थ है, स्वयं प्रकाश्य, चिन्मय, अखण्ड ब्रह्मानन्द-सहोदर है।'

भारतीय दृष्टिकोणके अनुसार दिये गअे साहित्यके तरह-तरहके रूपोंको समझनेमें यह कोष्टक अुपयोगी होगा--



---

[1] सिद्धांत समीक्षा पृष्ठ ९७

कविता

पिछले अध्यायमें हम यह देख चुके हैं कि काव्य मोटे रूपसे दो भागोंमें बाँटा गया है। १. दृश्य और २. श्रव्य। श्रव्य काव्य तीन भागोंमें बाँटा गया। १. गद्य २. पद्य तथा ३. चम्पू। अिन तीनोंमें जिसे **पद्य** कहा गया है, अुसीको **कविता** कहा जाता है। अतः अिस अध्यायके अंतर्गत केवल पद्यबद्ध साहित्यपर ही विचार किया जाअेगा। साहित्य क्षेत्रके विचारकोंने साहित्यकी ही भाँति अुसके अंतर्गत आनेवाले सभी अंगोपांगोंको परिभाषाकी सीमामें बाँधनेका प्रयत्न किया है। पद्य शब्द संस्कृतकी 'पद्' धातुसे बना है। अिसका कारण यह है कि कवितामें नृत्य जैसी गति रहती है।

परिभाषा

यद्यपि गद्य और पद्यमें वैसे काफी अन्तर है फिर भी हमें प्राचीन गद्यके कअी अैसे नमूने मिल जाते हैं जिनमें लय, ताल तथा अलंकार आदि सामग्री अितनी अधिक मात्रामें होती है कि वे पद्यको भी मात कर देते हैं।

कविता और काव्यको समानार्थी मानते हुअे संस्कृतके आचार्य विश्वनाथने **'रसयुक्त वाक्यको काव्य'** माना है। पंडित जगन्नाथकी रायमें **'रमणीयार्थ प्रतिपादक काव्य'** काव्य है। हिन्दीके सुप्रसिद्ध आलोचक

स्व.रामचंद्रजी शुक्लके अनुसार, '**जिस प्रकार आत्माकी मुक्तावस्था ज्ञान-दशा कहलाती है अुसी प्रकार हृदयकी वह मुक्तावस्था रस-दशा कहलाती है। हृदयकी अिसी मुक्तिकी साधनाके लिअे मनुष्यकी वाणी जो शब्द-विधान करती है अुसे कविता कहते हैं।**' कविताकी व्याख्याके संबंधमें सुश्री महादेवी वर्माके ये विचार पठनीय हैं, '**कविता कवि विशेषकी भावनाका चित्रण है और वह चित्रण अितना ठीक है कि अुससे वैसी ही भावनाअें किसी दूसरेके हृदयमें आविर्भूत हो जाती हैं।**'

अूपर दी हुअी सभी व्याख्याओंमें कविताको समझनेका प्रयत्न किया गया है। पर कविताको पूरी तरहसे समझनेके लिअे हमें काव्यके चार प्रमुख तत्वोंको पूरी तरहसे समझ लेना होगा। ये तत्व चार बतलाअे गअे हैं— १. **भावतत्व** २. **बुद्धितत्व** ३. **कल्पनातत्व** और ४. **रचनातत्व**। भाव तथा कल्पना कविताके प्रमुख तत्व हैं। कवि अपनी अनुभूति तथा आदर्शोंको भावनाओंसे परिपूर्ण करके चित्ताकर्षक रूपमें पाठकके सामने रखता है जिससे अुस रचनाको पढ़नेपर पाठकमें भी अुन्हीं भावोंका अुदय होने लगता है तथा वे जिस रूपमें अुसके सामने अुपस्थित किअे गअे हैं अुनके अुस रूपसे भी प्रभावित हो जाता है। अपनी अनुभूतियों और आदर्शोंमें अिस तरह प्रभाव अेवं चित्ताकर्षकता पैदा करते समय अुसे कल्पनाका भी सहारा लेना पड़ता है। श्रेष्ठ काव्यमें तीन तत्वोंका रहना आवश्यक है। १. **कल्पना** तथा **भाव**, २. **छंद** और ३. **भाषा** और **शैली**।

काव्यके तत्व

मनुष्यके हृदयमें जब भाव अेकके बाद अेक बादलोंके समूहकी तरह अुमड़ने लगते हैं तब हम देखते हैं कि मनुष्य स्वभावतः कुछ गुनगुनाने लगता है और गाने लगता है। अुसकी अिस क्रियामें भाव-पक्ष प्रबल है। अुसके बाद वह अपने अिन भावोंको शब्दों या छंदोंमें बांधकर कविताका रूप देता है, यह अुसका कला-पक्ष है। अिसे यदि और विस्तारपूर्वक समझें तो यों कहा

कल्पना तथा भाव

जा सकता है कि कविताका प्राथमिक अेवं मुख्य आधार है। भाव और अुन भावोंको भाषा द्वारा व्यक्त किया जाता है। अिन्हीं दो भिन्न-भिन्न तत्वोंके आधारपर कविताके दो पक्ष माने गअे—- १. **भावपक्ष** २. **कलापक्ष**। भाव यदि कविताकी आत्मा है तो भाषा अुनका शरीर। भाव अपनी अभिव्यक्तिके भेदके आधारपर भिन्न-भिन्न कलाओंका रूप धारण करता है। कहीं वह चित्र-कलाका रूप ले लेता है, कहीं नाट्य-कलाका और कहीं संगीतका तो कहीं कविता अथवा काव्य-कलाका।

यद्यपि कवितामें भावों तथा कल्पनाकी प्रधानता होती है तथापि अेक मात्र अुन्हींके सहारे अुत्कृष्ट कविताकी रचना नहीं हो सकती। क्योंकि गद्यके हम अैसे-अैसे अुत्कृष्ट अुदाहरण (बाण भट्टकी कादंबरी आदि) पाते हैं जिनमें कल्पना, भावना और चमत्कारका अंश कविताकी अपेक्षा किसी प्रकार भी कम नहीं है। किन्तु अिसका यह अर्थ नहीं कि कवितामें अिन गुणोंका होना आवश्यक नहीं। ये गुण तो होने ही चाहिअे पर अिसके साथ-साथ छन्दकी तथा संगीतकी भी आवश्यकता है। छन्द तथा लय-शून्य, पर भाव तथा कल्पनापूर्ण रचनाको हम पद्यात्मक गद्य ही कहेंगे। कहनेका तात्पर्य यह कि **'भाव तथा कल्पना वास्तवमें यदि कविताकी आत्मा हैं तो छन्द शरीर।'** आत्मा बिना शरीरमें जीवन नहीं रहेगा। वह निष्प्राण कहलाअेगा और शरीर बिना, आत्माका निवास किसमें होगा?

छन्द अितने ही पुराने हैं जितने कि वेद। छन्द-शास्त्रके आदि आचार्य पिङ्गल मुनि हैं। अुन्हींके नामपर छन्द-शास्त्रको पिङ्गल भी कहते हैं।

छन्द

'वास्तवमें छंद कविताकी स्वाभाविक गतिके नियम-बद्ध रूप हैं।' छंदोंमें वर्गोंकी गिनती ही प्रधान होती है। चाहे वह फिर वर्णोंकी गिनतीके रूपमें हो, मात्राओंकी गिनतीके रूपमें हो या लघु-गुरुके निश्चित क्रमके रूपमें हो।

अेक छंदमें प्रायः चार चरण होते हैं। किन्हीं-किन्हीं छंदोंमें जैसे छप्पय, कुंडलिया आदिमें छह चरण भी होते हैं। अुच्चारणमें लगनेवाले समयके भेदके आधारपर वर्णोंको लघु और गुरुमें बाँटा गया है। जिसमें कम समय लगे वह लघु और जिसमें अधिक समय लगे वह गुरु। छंदको पढ़ते समय बीचमें जहाँ ठहरना होता है अुसे यति (विराम या विश्राम) कहते हैं। छंद मुख्यतया दो प्रकारके होते हैं—**मात्रिक** और **वर्णिक**। जिनमें अक्षरोंके ह्रस्व, दीर्घ विभाजनमें मात्राओंकी गिनती की जाती है अुन्हें **मात्रिक** कहते हैं और जहाँ केवल अक्षरोंकी गिनती की जाती है अुन्हें **वर्णिक-छंद** कहते हैं।

प्रत्येक चरणमें प्रयुक्त मात्राओं और वर्णोंकी संख्याके आधारपर तीन विभाग और किये गअे हैं-- **सम, अर्धसम** और **विषम**। जिस छंदमें चारों चरणोंमेंसे प्रत्येककी मात्राअें समान हों वे **सम** कहलाते हैं। जिनमें पहले और तीसरे तथा दूसरे और चौथे चरणोंकी मात्राओं अथवा वर्णोंकी संख्या मिलती हो वे **अर्द्ध-सम** कहलाअेंगे। और जिन छंदोंके चारों चरणोंकी मात्राओं और वर्णोंका अेक दूसरेसे मेल नहीं खाता होगा वे **विषम** कहलाते हैं।

पदके अन्त्य अक्षरोंके अुच्चारणके साम्यको **तुक** मिलना कहते हैं। तुकके आधारपर भी छंदके तीन भेद किये गअे हैं–**तुकान्त, अतुकान्त** और **भिन्न तुकान्त**। आजकल हम देखते हैं कि कवितामें छंदोंके प्रतिबन्धको आवश्यक नहीं माना जाता और यह प्रवृत्ति हिन्दीके अधिकांश आधुनिक कवियोंमें बढ़ती जा रही है। अुनका कहना है कि '**छंद अेक बाह्य संस्कार है अुसका अपना कोअी स्वरूप नहीं, और वह अूपरसे आरोपित किया गया है**।' पर वास्तवमें बात अैसी नहीं है। छंद भी वास्तवमें कविके अन्तर्जगतकी स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। हाँ, नियमोंका आरोपण अवश्य बादमें किया गया है। कवितामें अुसके स्वाभाविक गुणोंको लानेके लिअे छंद या लयका बन्धन सहायक ही होता है बाधक नहीं।

कवितामें छंद और लयके आधारपर अुसका संगीतमय रूप वांछनीय माना गया है। संगीतके कारण कविता अेक अलौकिक शक्ति प्राप्त करती है। कभी-कभी छंदोंके नियमोंके कारण शब्द कविता और स्वर (संगीत) में विरोध सा होने लगता है अुस समय अिस विरोधको हटानेके लिअे संगीत अर्थात् छंदके नियमोंको थोड़ा शिथिल कर देना ही वांछनीय होता है। यद्यपि कवियोंको हमारे साहित्य मनीषियोंने निरंकुश माना है, अुनपर किसी तरहका अंकुश नहीं होता। फिर भी चीजके आकार-प्रकारको समझनेके लिअे किन्हीं न किन्हीं नियमोंकी आवश्यकता तो होती ही है। हाँ! यह अवश्य है कि कहीं-कहीं बहुत अधिक नियमों अेवं बन्धनोंके कारण लाभ होनेके स्थानपर हानि भी हुअी है।

छन्दोंके बंधनको आवश्यक न माननेके कारण अिधर कअी कवियोंने छंदहीन कविताकी भी बहुत बड़ी मात्रामें रचना करना आरंभ कर दिया है। अैसी कविताओंको मुक्त-छंदात्मक कविताअें कहा जाता है। छंद-हीन होती हुअी भी अिन्हें कविता ही माना जाता है, गद्य नहीं कहा जाता और अिसका प्रधान कारण यही है कि गद्य मस्तिष्क (बुद्धि)'की चीज है तो पद्य हृदयकी। अेक बात यहाँ अवश्य स्मरण रखने योग्य है कि यद्यपि कुछ आधुनिक कविताओंमें छंद भले ही न मिलते हों पर अुनमें लय अवश्य होती है। वे लय-शून्य नहीं होतीं।

कलापक्षका मुख्य माध्यम भाषा है। कविकी भाषा साधारण लोगोंकी भाषासे भिन्न प्रकारकी होती है। अुसमें कअी अैसे अर्थ छिपे रहते हैं जिन्हें समझनेके लिअे तरह-तरहकी शक्तियों अेवं कल्पनाओंसे काम लेना पड़ता है। कवि बहुत थोड़ेमें बहुत अधिक कहकर गागरमें सागर भरनेका प्रयत्न करता है। अुसके कहनेका ढंग भी अिस प्रकारका होता है कि जिस वस्तु या दृश्यको वह हमारे सामने अुपस्थित करना चाहता है अुसे सजीव रूपमें हमारे सामने अुपस्थित कर देता है। अैसा

भाषा

करनेमें समर्थ होनेके लिअे अुसकी भाषा असाधारण, चमत्कारपूर्ण, परिष्कृत तथा अच्छी मँजी हुअी होनी चाहिअे या होती है।

काव्य-रचनामें भावोंके अतिरिक्त चिंतन भी आवश्यक है अिसलिअे अिस चिंतनके अनुरूप शब्दोंका चुनाव करना पड़ जाता है। अपने भावोंके अनुरूप शब्दोंको ढूँढ़नेके लिअे ही कविको शब्द-शक्तियोंका ज्ञान होना आवश्यक है। वह बार-बार पढ़कर यह देखनेका प्रयत्न करता है कि शब्दावली ठीक है या नहीं और अिसी दृष्टिसे बार-बार अुसका परिष्कार करता रहता है। कवि या साहित्यकार अपनी भाषामें कभी भी अनावश्यक शब्दोंको नहीं आने देगा। बिहारीमें यही कला होनेके कारण तो अुनके दोहोंके विषयमें कहा जाता है—'**देखनमें छोटे लगें, घाव करें गम्भीर।**' भाषाकी अिसी विशेषताको ध्यानमें रखते हुअे आचार्योंने शब्दोंकी शक्तिके तीन भेद किअे हैं—**अभिधा, लक्षणा, और व्यंजना।** अिन तीनों शक्तियोंका अुल्लेख संक्षेपमें साहित्यके अध्यायमें कर दिया गया है।

कविता अथवा काव्यकी श्रेष्ठताकी दृष्टिसे शब्द तथा अर्थोंके तीन गुणोंका भी अुल्लेख किया गया है—१. **माधुर्य**, २. **ओज** तथा ३. **प्रसाद**। अिन तीनों गुणों द्वारा पाठकके चित्तकी वृत्तियोंपर तीन तरहके असर पड़ते हैं। जिस काव्यको पढ़नेपर हमारा चित्त द्रवित हो जाअे, पिघल जाअे वह माधुर्य गुणयुक्त कहलाअेगा। जिसके पढ़नेपर हमारे हृदयमें अुत्साह पैदा होगा, वह ओजयुक्त काव्य कहलाअेगा।

चकित चकत्ता चौंकि चौंकि अुठें बार-बार,
दिल्ली दहसति, चितै चाह करषति है।
बिलखि बदन बिलखात बिजेपुर-पति,
फिरति फिरंगिन की नारी फरकति है॥
थर-थर कांपत कुतुबसाह गोलकुंडा,
हहरि हबस भूप भीर भरकति है।
राजा सिवराजके नगारनकी धाक सुनि,
केते पातसाहनकी छाती दरकति है॥

(**भूषण**)

ओजयुक्त रचनाओंमें अधिकतर संयुक्ताक्षरों या द्वित्त वर्णोंका प्रयोग होता है। यदि यह द्वित्तयुक्त शब्दावली अनुप्रासपूर्ण हो तो प्रभाव और अधिक हो जाता है। जिस शब्दावलीको पढ़नेसे हमारा हृदय प्रसन्न होगा अुसे प्रसाद गुणसे युक्त कहा जाअेगा। प्रसाद गुण कविताका या काव्यका अेक सर्वसाधारण गुण है। ओज और माधुर्यपूर्ण रचनाओंमें भी हम प्रसाद गुण पाते हैं। अैसे सरल तथा सरलतासे समझनेमें आनेवाले शब्द जिनको सुनते ही अुनका अर्थ पाठककी समझमें आ जाता हो प्रसाद-गुणयुक्त कहे जाअेंगे।

कविताके कला-पक्षमें अलंकार भी विचारणीय हैं। साहित्यपर विचार करते समय हमने देखा है कि—

जदपि सुजाति सुलक्षणी, सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिनु नहिं राजअी, कविता, वनिता, मित्त॥

अलंकार

नारीके शारीरिक सौंदर्यकी वृद्धिके लिअे जिस प्रकार तरह-तरहके आभूषणोंकी आवश्यकता होती है अुसी तरह अलंकार कविता-कामिनीके सौंदर्यमें भी वृद्धि ही करते हैं। पर अलंकारोंका होना नितान्त आवश्यक नहीं। यदि नारी अपने-आपमें सुन्दर है तो आभूषण-विहीन होनेपर भी अुसके सौंदर्यमें कमी न होगी। हाँ, अितना अवश्य माना जाता है कि यदि अलंकार हों तो अुसका सौंदर्य और भी अधिक निखर अुठेगा।

अलंकारोंकी अुपयोगिताके संबंधमें किसी साहित्य मर्मज्ञका विचार है कि '**अेक तरफ तो अलंकारोंका काम भावोंको रमणीय और सौंदर्ययुक्त बनाना है, दूसरी तरफ अुनका काम भावोंकी अभिव्यक्तिको परिष्कृत करके अुन्हें चमत्कारपूर्ण तथा प्रभावोत्पादक बना देना होता है**।' वास्तवमें काव्यमें अलंकारोंकी यही अुपयोगिता है कि वे काव्यमें अैसा चमत्कार अेवं आकर्षण अुत्पन्न कर दें जिससे अुसे पढ़नेपर पाठक रसमग्न होकर आनंदित हो अुठें। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिअे कि अलंकार साध्य नहीं वरन् कवितामें रसकी वृद्धिके साधन-मात्र हैं। भावोंकी कमी होनेपर अथवा न होनेपर अेक-मात्र अलंकार क्या रस अुत्पन्न कर सकेंगे अेवं क्या सौंदर्यमें वृद्धि कर सकेंगे?

अलंकारोंके दो मुख्य भेद हैं– **शब्दालंकार** और **अर्थालंकार**। जहाँ शब्दोंमें चमत्कार हो वहाँ **शब्दालंकार** माना जाता है। जहाँ अर्थमें चमत्कार हो वहाँ **अर्थालंकार** होता है। कभी-कभी शब्द और अर्थ दोनोंमें चमत्कार होता है वहाँ **अुभयालंकार**। शब्दालंकारकी पहचान यही है कि **जहाँ शब्दोंके बदल देनसे चमत्कार जाता रहे वहाँ शब्दालंकार होता है**।

कनक कनक तें सौगुनी, मादकता अधिकाय।
या खाये बौरात है, वा पाये बौराय॥

अुपर्युक्त दोहेमें यदि दूसरे कनकके स्थानपर सोना शब्दका प्रयोग कर दिया जाअे तो चमत्कार नष्ट हो जाअेगा। अतः अिस दोहेमें चमत्कार अिस बातका है कि नाम अेक होते हुअे भी जिस कनकका अर्थ सोना है अुसमें अपनी कुछ अधिक विशेषता दर्शायी गयी है।

जहाँ शब्दोंके बदलनेपर भी अर्थमें परिवर्तन नहीं होता, वहाँ अर्थालंकार होता है। अिसका कारण यह है कि अर्थालंकारमें चमत्कार शब्दपर नहीं वरन् अर्थपर निर्भर होता है। यदि 'यह चद्दर दुग्ध फेन सम श्वेत है'–में दुग्ध फेन समश्वेतके स्थानपर बदलकर क्षीर-फेन-सम श्वेत कर दिया जाअे तो अर्थमें किसी तरहका भी अन्तर नहीं पड़ता। अतः अैसे स्थानपर अर्थालंकार होगा।

काव्य अथवा कविताका आधार कल्पना है। कल्पना अुसका सबसे महत्त्वपूर्ण तत्व है। कवि अपनी कल्पनाके आधारपर अिस संसारकी वस्तुओंके संबंधमें तरह-तरहके विचार प्रकट करता है। अिस संसारकी ही नहीं वरन् अिस संसारसे परेकी बातोंके संबंधमें भी वह अपने विचार प्रकट करता है। कवि दिन-प्रतिदिनके जीवनकी घटनाओं, संपर्कमें आअे हुअे मनुष्यों तथा प्रतिदिनके अनुभवोंको तरह-तरहसे आकर्षक रूप देकर हमारे सामने प्रस्तुत करता है। अपनी अिस कल्पनाके वाहनपर वह अैसे-अैसे

रहस्योंका अुद्‌घाटन करता है जहाँ सर्वसाधारणकी कल्पनाका पहुँचना भी कठिन है। अिसीलिअे तो कहा गया है कि **'जहाँ न पहुँचे रवि, तहाँ पहुँचे कवि'** अर्थात् जहाँ सूर्यकी किरणें भी नहीं पहुँच पातीं वहाँ कवि अपनी कल्पनाके सहारे सहज ही में पहुँच जाता है। कवियोंने अपनी कल्पनाके वलसे कितने ही अैसे महान पात्रोंकी सृष्टि की है जो जनताके हृदयपर चिर कालतक शासन करते रहेंगे।

कविताके राज्यमें जहाँ कल्पनाका अितना बड़ा साम्राज्य है वहाँ अुसका महत्व भी कम नहीं है। अुसका सत्य होना भी अुतना ही अधिक महत्व रखता है। काव्यके राज्यमें अेकमात्र वही सत्य नहीं माना जाता जो वास्तवमें है, पर जो कुछ हो सकता है वह भी सत्य ही माना जाता है। कहनेका तात्पर्य यह कि **'कवि जीवन, जगत, प्रकृति तथा मन अित्यादिमें प्रविष्ट होकर अुनके आंतरिक अेवं चिरंतन सत्यकी खोज करता है।'** वह संसारको जैसा देखता है अेकमात्र वैसा ही स्वीकार नहीं करता परंतु अपनी रुचिके अनुसार अुसका रूप बदल डालता है।

रामायणमें रामके वन जानेके समय दशरथने जो विलाप किया था वह संभवत: अितिहासकी कसौटीपर सत्य न सिद्ध हो पर अुसके भीतर जो पुत्र-वियोगसे अुत्पन्न होनेवाली दुखकी भावना है वह चिर सत्य है और सत्य रहेगी।

कृष्णके विरहमें गोपियोंकी मन:स्थितिका विरह-पूर्ण वर्णन अैतिहासिक दृष्टिसे संभवत: संदेहपूर्ण हो पर अुसमें विरही और विरहिणियोंके जीवनका अेक चिरंतन सत्य वर्तमान है। आज भी अपने प्रियके वियोगमें प्रेमिकाओंकी दशा अैसी ही होती देखी गयी है। कवितामें वास्तवमें जीवनका चिरंतन सत्य सदा वर्तमान रहता है। वह कभी पुराना नहीं पड़ता। अिसी सत्यके वर्तमान रहनेके कारण कविता भी कभी पुरानी नहीं पड़ती। वह हमेशा सामयिक बनी रहती है और हर युगमें नयी ही लगती है। लोग ज्यों-ज्यों अुसे पढ़ते हैं त्यों-त्यों अुसका सौंदर्य निखरता ही जाता है—

'ज्यों ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि,
त्यों त्यों खरी निकरै-सी निकाअी।'

कविका संबंध अैसे ही सत्योंसे होता है।

पाश्चात्य अेवं भारतीय आचार्योंने कविताके कअी भेद अेवं अुपभेद किअे हैं। अेक विद्वानने कविताके दो भेद किअे हैं— **शक्ति काव्य** और **कला-काव्य**। **शक्ति-काव्य** के अंतर्गत वे रचनाअें मानी गअीं जिनमें लोक प्रवृत्तिको परिचालित करने या प्रभावित करनेकी शक्ति होती है। कलाकाव्यमें आनन्द अथवा मनोरंजनकी भावना होती है।

काव्यके भेद अुपभेद

कुछ लोगोंने **नाटक काव्य, प्रकृत काव्य, आदर्शात्मक काव्य, अुपदेशात्मक काव्य, कलात्मक काव्य** आदि कअी भेद किअे हैं। किन्तु सर्वमान्य भेद दो ही हैं— **व्यक्तित्व प्रधान** अथवा **विषयीगत** और **विषय-प्रधान** अथवा **विषयगत**। भारतके विद्वानोंने भी अिसी विभाजनको स्वीकार किया है। रवीन्द्रनाथ ठाकुरने भी अिन्हीं भेदोंकी व्याख्या करते हुअे लिखा है— '**साधारणतया काव्यके दो विभाग किअे जाते हैं। अेक तो वह जिसमें केवल कविकी बात होती है, दूसरा वह जिसमें किसी बड़े संप्रदाय या समाजकी बात होती है।**

दूसरी श्रेणीके कवि वे हैं जिनकी रचनाके अन्तःस्तलसे अेक देश, अेक सारा युग, अपने हृदयको अपनी अभिज्ञताको प्रकट करके अुस रचनाको सदाके लिअे समादरणीय सामग्री बना देता है। अिस दूसरी श्रेणीके कवि ही महाकवि कहे जाते हैं।'

स्व॰ डॉक्टर श्यामसुंदरदासने भी अिसी विभाजनको स्वीकार किया था। कहनेका तात्पर्य यह कि **भाव-प्रधान** और **विषय-प्रधान** ये दो भेद ही सर्वमान्य, युक्तिसंगत अेवं वैज्ञानिक भेद हैं।

भाव-प्रधान कविताकी विशेषता यह है कि अुसमें कविकी अपनी अनुभूतियों, भावनाओं और आदर्शोंकी प्रधानता होती है। कवि अपने अंतरके भावोंको प्रकट करना चाहता है। वह अपने अिन भावोंको अिस ढंगसे प्रकाशित करता है मानों वे मानव जातिके ही भाव हों और अिसका परिणाम यह होता है पाठक अुन वर्णित भावोंमें अपने भावोंको पाने लगता है और अिस तरह कविके भाव पाठकके ही नहीं वरन् सारे संसारके भाव बन जाते हैं। श्रृंगार, नीति, आदिकी रचनाअें अिसी श्रेणीके अंतर्गत आती हैं। चूंकि अिन रचनाओंमें भाव प्रधान होते हैं अतः अिनमें गीत-तत्वकी प्रधानता होती है और अिसीसे अैसी रचनाअें गीत-काव्य कहलाती हैं।

विषय-प्रधान कविता की विशेषता यह होती है कि अुसमें केवल वर्णनकी ही प्रधानता होती है। अतः अैसी कविताओंका विषय बाहर संसारमें ही ढूंढ़ा जाता है। कवि अपनी प्रेरणा बाह्य संसारसे ही लेता है। अैसी रचनाओंमें कविका अपना व्यक्तित्व परोक्ष रूपमें काम करता है। **खंड-काव्य** और **महा-काव्य** अिसी विभाजनके अंतर्गत आते हैं।

बंधकी दृष्टिसे आचार्योंने श्रव्य काव्यके दो भेद किअे हैं १. **प्रबंध-काव्य** और २. **निबंध** या **मुक्तक-काव्य**।

प्रबंध-काव्य को भी तीन भेदोंमें बाँटा गया है—

१. महा-काव्य २. काव्य और ३. खण्ड-काव्य।

महा-काव्यमें किसी महान अुद्देश्यको लेकर जीवनकी पूरे रूपमें अभिव्यक्ती की जाती है अुसका नायक जातीय जीवनका प्रतिनिधि स्वरूप होता है तथा अुसका भी जीवन जातीय-जीवनके साथ-साथ कअी विशेषताओंको लिअे हुअे चित्रित किया जाता है। महा-काव्यका आकार भी विशाल होता

है। संस्कृतके काव्य ग्रंथोंमें तो महा-काव्यके लक्षणोंकी अेक लंबी सूची दी गयी है। [1]

विश्वकवि रवीन्द्रनाथने महा-काव्यको संक्षेपमें समझाते हुअे कहा है कि '**महा-काव्यमें अेक महाचरित्र होना चाहिअे और अुसी महच्चरित्रका अेक महत्कार्य और महानुष्ठान होना चाहिअे।**' रामायण, महाभारत, कामायनी, कृष्णायन आदि महा-काव्यकी श्रेणीमें ही आते हैं।

काव्य *अैसा ग्रंथ है जो महा-काव्यकी प्रणालीपर तो लिखा जाता है पर अुसमें महाकाव्यके पूरे लक्षण नहीं मिल पाते। कुछ लोग साकेत, प्रियप्रवास आदि ग्रंथोंको अिसी कोटिमें मानते हैं।*

खण्ड-काव्यमें किसी प्रसिद्ध या अप्रसिद्ध घटनाको प्रधान कथाके रूपमें मानकर वर्णन किया जाता है। किन्तु यह घटना अपने आपमें पूर्ण होती है। यह घटना काल्पनिक भी हो सकती है। खण्ड-काव्यकी रचनाका अुद्देश्य भी अत्यंत साधारण हो सकता है। मैथिलीशरणका 'जयद्रथ-वध', अनघ: रामनरेश त्रिपाठीके 'मिलन' तथा 'पथिक' अिसी कोटिकी रचनाअें हैं।

मुक्तक-काव्य में कथाका वैसा तारतम्य नहीं मिलता जैसा महाकाव्य, काव्य या खण्ड-काव्यमें मिलता है। मुक्तक काव्यका प्रत्येक पद अेक स्वतंत्र घटनाको लिअे होता है और वह अपने आपमें पूर्ण होता है। बिहारीके दोहे, सूरके पद आदि मुक्तक रचनाके अंतर्गत आते हैं।

---

[1] महा-काव्यका सर्गबद्ध होना आवश्यक है। अुसका नायक धीरोदात्त क्षत्रिय अथवा देवता होना चाहिअे। यह आठ सर्गोंसे बड़ा तथा अनेक वृत्तों (छन्दों) से युक्त होना चाहिअे; पर प्रवाहको व्यवस्थित रूपसे कायम रखनेके लिअे अेक सर्गमें अेक ही छंद होना चाहिअे। महा-काव्यकी कथा अितिहास-सिद्ध होती है अथवा सज्जनाश्रित। शृंगार, वीर और शान्त रसोंमेंसे कोअी अेक रस, प्रधान होता है। प्रकृति वर्णनके रूपमें अिसमें नगर, समुद्र, पर्वत, संध्या, प्रातःकाल, संग्राम, यात्रा तथा ऋतुओं आदिके वर्णन भी आवश्यक हैं।

अुपन्यास

अुपन्यासमें पहले नाटक और कविता द्वारा लोगोंका मनोरंजन होता था किन्तु आजकल चारों ओर अुपन्यास और कहानियोंका ही राज्य है। अिस युगमें अुपन्यास सबसे अधिक लोकप्रिय हुअे।

समय और परिस्थितिके अनुसार चीजोंकी अच्छाअी और बुराअीमें भी परिवर्तन होता रहता है। जो चीज आज अच्छी होती है वही कुछ समयके पश्चात् बुरी और अनुपयोगी भी सिद्ध हो सकती है। यही स्थिति नाटककी अुपयोगिताके संबंधमें भी हुअी। नाटक सामंती-युगकी चीज माना जाने लगा। यद्यपि अुससे शिक्षित और अशिक्षित दोनोंहीका समान रूपसे मनोरंजन होता है तथापि नाटकके प्रति लोगोंकी रुचि कम होती गअी और मनोरंजनकी व्यवस्था खर्चीली तथा अधिक श्रम-साध्य सिद्ध होने लगी। नाटक और कवितासे आनन्द प्राप्त करनेमें अेक विशेष प्रकारकी शक्तिकी आवश्यकता होती है जो जन साधारणके सभी व्यक्तियोंमें सर्व-साधारण तौरपर नहीं होती। अुपन्याससे साधारण शक्तिका आदमी भी अपना मनोरंजन कर सकता है। अिसलिअे भी अुपन्यासोंकी लोक-प्रियता तीव्रगतिसे बढ़ी।

धीरे-धीरे अुपन्यासके अुद्देश्योंमें भी अन्तर हो गया। जहाँ प्रारम्भमें अुपन्यासोंकी रचना केवल मनोरंजनके लिअे ही की जाती थी, वहाँ आज व्यक्ति, समाज और अुनकी बौद्धिक तथा नैतिक धारणाओंके

विश्लेषणके लिअे ही अुनकी रचना हो रही है। संस्कृतके लक्षण-ग्रंथोंमें अुपन्यास शब्द पाया जाता है। अुपन्यास नाट्य-शास्त्रमें वर्णित प्रतिमुख-संधिका अेक अुपभेद है। अिसकी व्याख्या अिस प्रकार की गअी है [1]'किसी अर्थको अुसके युक्तियुक्त अर्थमें प्रस्तुत करनेको ही अुपन्यास कहते हैं।' कुछ लोगोंके अनुसार [2]'**प्रसन्नता प्रदायक कृतिको अुपन्यास कहते हैं।**'

व्याख्या और परिभाषा

आजकल अुपन्यासके अन्तर्गत '**गद्य द्वारा अभिव्यक्त, संपूर्ण कल्पना प्रसूत कथा-साहित्य ग्रहण किया जाता है।**' अतः हम देखते हैं कि अुपन्यासकी परिभाषामें भी धीरे-धीरे अन्तर होता गया है। प्राचीन कालके अुपन्यास शब्दमें तथा आजमें केवल मात्र नामकी ही समता है। अुपन्यास सम्राट् स्व. मुंशी प्रेमचंदजीने अुपन्यासकी परिभाषा करते हुअे कहा है, "**मैं अुपन्यासको मानव-जीवनका चित्र मानता हूँ। मानव-चरित्रपर प्रकाश डालना और अुसके रहस्योंको खोलना ही अुपन्यासका मूल तत्व है।**" अिससे स्पष्ट है कि अुपन्यास मानव-जीवनमें प्रतिदिन घटनेवाली, घटनाओंका अेक जीवन-चित्र है। यह अेक साधन है जो जीवनके संघर्षोंका चित्रण करते हुअे सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक गुत्थियोंको सुलझानेमें सहायता करता है। निश्चय ही साहित्य ही में नहीं वरन् प्रत्यक्ष जीवनमें भी अुपन्यासोंका महत्वपूर्ण स्थान है।

अुपन्यासके निर्माणमें विभिन्न तत्व कार्य करते हैं। ये प्रधानतः अिस प्रकार हैं— **कथा-वस्तु, पात्र, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, देशकाल और वातावरण, अुद्देश्य, तथा शैली।**

---

[1]अुपपत्ति कृतोह्यर्थः अुपन्यासः प्रकीर्तितः

[2]अुपन्यासः प्रसादनम्

किसी विज्ञ साहित्यकारका मत है कि अुपन्यासमें कथानकका वही स्थान है जो शरीरमें हड्डियोंका । बिना हड्डियोंके जैसे मांस-पेशियाँ स्थिर नहीं रह सकतीं वैसे ही बिना कथानकके किसी भी अुपन्यासका ढाँचा नहीं खड़ा किया जा सकता । यह बात दूसरी है, कि चतुर लेखक अपने व्यक्तिगत चातुर्यके कारण किसी भी कथानकको लेकर अपनी प्रतिभाके बलपर अेक सुन्दर अुपन्यास लिख डाले । किन्तु अगर लेखक की प्रतिभाके साथ-साथ कथानक भी सुन्दर है तो अुपन्यास भी अतीव ही सुन्दर बनेगा. अिसमें सन्देह नहीं । कथानकका अर्थ केवल वे घटनाअें हैं जो लेखकको सम्मिलित रूपमें अपने विचार प्रकट करने तथा अुपन्यासका ढाँचा तैयार करनेके लिअे अुत्तेजित करती हैं ।

कथावस्तु

संसार घटनाशील है । अिसमें प्रतिदिन घटने वाली किसी भी घटनाको लेकर अुपन्यासकी रचना की जा सकती है । कहनेका तात्पर्य यह कि अुपन्यासके कथानककी सामग्री संसारके विस्तृत क्षेत्रसे मिल सकती है। आवश्यकता अिस बात की है कि लेखक अनुभवशील हो और साथ-साथ अध्ययनशील भी हो । विषय कुछ भी हो पर लेखकको अुसका पूरा ज्ञान होना चाहिअे । अितिहास, पुराण या जीवनीसे भी अुपन्यासका कथानक चुना जा सकता है पर आजकल जीवनसे सम्बन्धित कथानकको ही अधिक महत्व दिया जाता है । अैतिहासिक और पौराणिक कथावस्तुको लेनेपर अुसमें रोचकता और सजीवता लानेके लिअे हमें कल्पनासे काम लेना ही होगा अतः यह संभव है कि अुसमें अस्वाभाविकताका समावेश हो जाअे ।

जीवनके दैनिक संघर्षसे अूबकर मनोरंजनके लिअे, चित्तको शान्ति देनेके लिअे, जी बहलानेके लिअे हम कुछ देर अुपन्यास लेकर बैठ जाते हैं । अिसलिअे अुपन्यासमें वर्णित कहानी अितनी रोचक होनी चाहिअे जिसे पढ़ते-पढ़ते पाठक अुसीमें तन्मय होकर अपनी असली दुनियाको भूल जाअे । किन्तु

अिस तरहकी काल्पनिक सृष्टिकी रचना विलक्षण, सुसंगत, बुद्धिगम्य और सत्य होनी चाहिअे। रोचकताको कायम रखनेके लिअे लेखकको यह भी ध्यानमें रखना होगा कि कथा वस्तुमें अनावश्यक अंशका कहीं समावेश न हो जाअे। सारा कथानक पाठकके सामने सुसम्बद्ध रूपमें प्रस्तुत किया जाअे। कथावस्तुकी सामग्रीका सफल अुपयोग करनेमें भी अेक कला होती है। प्रत्येक घटनाका परस्पर अिस तरहका सम्बन्ध हो जिससे कुछ भी असंगत न जान पड़े। तात्पर्य यह कि अुसके सब अंगोंमें परस्पर साम्य और समीचीनता रहे।

अुपन्यासोंकी कथा कहनेके तीन ढंग हैं। पहले ढंगके अुपन्यासोंमें अुपन्यास लेखक अितिहासकारका स्थान ग्रहण करता है। वर्णनीय कथासे अपनेको अलग रखकर लेखक अपनी कथा-वस्तुको क्रमशः विकसित करता है तथा पढ़नेवालोंको अन्तिम परिणाम तक पहुँचाकर अपना अभीष्ट प्रभाव अुत्पन्न करता है। अिस प्रकारको वर्णनात्मक ढंग भी कहा जा सकता है। प्रेमचंदजीका 'गोदान' वृन्दावनलाल वर्मा का 'गढ़कुण्डार' आदि अुपन्यासोंके कथानक अिसी प्रकारके हैं।

दूसरे ढंगमें अुपन्यास लेखक नायकका आत्म-चरित्त अुसीके मुँहसे अथवा कभी-कभी गौण पात्रके मुँहसे कहलाता है।

तीसरे दर्जेमें चिट्ठियों आदिके द्वारा कथानक वर्णित होता है। अिसमें कथा-वस्तुके वर्णनमें लेखकको अनेक कठिनाअियाँ अुठानी पड़ती हैं। अिनमेंसे पहला ढंग अधिक काममें लाया जाता है और तीसरा बहुत ही कम।

कथा-वस्तुके आधारपर अुपन्यासोंके दो भेद होते हैं। अेक तो वे अुपन्यास जिनकी कथा-वस्तु गठित (Novels of Organic plot) होती है। जैसे-अुग्रजीका 'चंद हसीनोंके खतूत' और दूसरे वे जिनकी कथा-वस्तु गठित नहीं होती (Novels of Loose plot)

पात्र और चरित्र-चित्रण

यह आवश्यक नहीं है कि किसी अुपन्यासको पढ़ लेनेपर अुसकी कथावस्तु हमें बहुत दिनोंतक याद रहे ही किन्तु अुसमें आनेवाले पात्रोंका असर हमपर बहुत दिनोंतक बना रहता है। पात्रोंके किसी या किन्हीं विशिष्ट गुणोंका कुछ अैसा मधुर और प्रभावोत्पादक असर होता है कि भुलाये भी नहीं भूलता। अिसीलिअे किसी लेखकने ठीक ही कहा है कि '**चरित्रांकनकी सफलता तो यह है कि पुस्तक बन्दकर देने तथा सूक्ष्म विवरण भूलजानेपर भी अुसके पात्र हमारी स्मृतिमें जीवित रह सकें।**' यह तभी संभव है जब लेखक द्वारा किये गअे चरित्र-चित्रणमें न तो बहुत कुछ बढ़ाचढ़ाकर ही कहा गया हो और न अुसे आवश्यकतासे कम महत्त्व दिया गया हो। अिसको यदि हम दूसरे शब्दोंमें कहना चाहें तो कह सकते हैं कि "**प्रत्येक कलाकारका अमर पात्र अुसके अपने अमरत्वका द्योतक है।**" प्रेमचंदके गोदानका होरी अैसे ही पात्रोंमेंसे है।

चरित्र-चित्रणके अन्तर्गत पात्रोंकी बाह्य और आन्तरिक दोनों विशेषताओंपर प्रकाश डाला जाता है। प्रत्येक पात्रमें सर्व साधारण तौरपर गुण भी होते हैं और दोष भी। अतः अुसके संबंधमें जानकारी होनेके साथ ही साथ हमारी सहानुभूति भी अुसके साथ-साथ चलती है। अुसे दुखी देखकर सहज ही हमारे मनकी करुणा जाग अुठती है। यह सब अेक मात्र अिसीलिअे कि अुसे हम अपने जैसा ही पाते हैं। आज तो चरित्र-चित्रणका मुख्य अुद्देश्य मानवकी कमजोरियोंके साथ-साथ अुसकी सबलताओंका प्रदर्शन है।

यद्यपि पात्रोंकी अवतारणा या रचना लेखक ही करता है तथापि अुनका अपना अेक स्वतंत्र अस्तित्त्व भी होता है। अुपन्यासकार अुन्हें अपने अिशारोंपर नहीं नचा सकता। यदि अैसा होता है तो पात्र कठपुतलीसे निर्जीव लगने लगते हैं। पात्रोंको निरंतर गतिशील होना चाहिअे।

सफल चरित्र-चित्रण सबसे सुन्दर और कठिन कला है। सजीव तथा मार्मिक चित्र अुपस्थित करना ही अुपन्यास-लेखककी कलाकी सजीवता

और निपुणता है । अिसमें सफल होनेके लिअे मनोवैज्ञानिक अध्ययन तथा सजीव वर्णन करनेकी शक्तिकी नितांत आवश्यकता है ।

चरित्र-चित्रण कअी प्रकारसे किया जा सकता है कुछ लेखक स्वयं वर्णनद्वारा अपने शब्दोंमें पात्रोंके चारित्रिक गुण दोषोंका वर्णन करते हैं । प्रेमचन्दजीके अुपन्यासोंमें हम यह बात पाते हैं । किन्तु आधुनिक युगमें अिस शैलीका विशेष महत्व नहीं है क्योंकि पात्रोंको आँकनेका मापनयंत्र अुपन्यासकारका दृष्टिकोण ही नहीं होता । पाठक स्वयं पात्रोंका अध्ययन कर अुनके विषयमें अपनी धारणा बनाना चाहता है । अिस प्रणालीको साक्षात् या **विश्लेषणात्मक** (Analytic) प्रणाली भी कहते हैं ।

दूसरे प्रकारके चरित्र-चित्रणको **संकेतात्मक या नाटकीय** (Indirect or Dramatic) चरित्र-चित्रण कहते हैं । अिसमें लेखक स्वयं अपनी ओरसे कुछ नहीं कहता । पात्रोंके ही कथन अेवं व्यापारसे तथा अन्य पात्रोंकी सम्मति, टीकाटिप्पणी तथा दूसरा पात्र अुसे किस भावनासे देखता है, अिन सारी संकेतात्मक बातोंसे ही पात्रके चरित्रका पता लगता है । वर्तमान युगमें यही प्रणाली अधिक अुपयोगी जान पड़ती है । लेखकके लिअे यही अुचित है कि वह स्वयं पात्रोंके चरित्र-चित्रणपर अपना निर्णय न दे । निर्णय करनेका मौका तो पाठकोंको ही दिया जाअे ।

कथोपकथन द्वारा पात्रोंकी आपसमें टीकाटिप्पणी होती है । अतः **अभिनयात्मक** प्रणालीमें पात्रोंके वार्तालाप (बातचीत) करते समय, अेक दूसरेके चरित्रपर प्रकाश डालते समय अुनके चरित्रोंका भी पता लग जाता है । जो व्यक्ति जैसा कुछ बोलता है अुसपरसे अुसके चरित्रकी विशेषताओंका भी तो पता लग ही जाता है । आत्म-कथात्मक और पत्रात्मक प्रणालीमें चरित्र-चित्रणका यह ढंग विशेष अुपयोगी होता है। 'गोदान' में रायसाहब और खन्नाकी बातचीतसे मेहताके चरित्रका भी पता लग जाता है । देखिये—

रायसाहब बोले— यह मेहता कुछ अजीब आदमी है, मुझे तो कुछ बना हुआ-सा मालूम होता है ।

खन्ना बोले—— मैं तो अुन्हें केवल मनोरंजनकी वस्तु समझता हूँ। कभी अुनसे बहस नहीं करता। और करना भी चाहूँ तो अितनी विद्या कहाँसे लाअूं। जिसने जीवनके क्षेत्रमें कभी कदम भी नहीं रखा वह अगर जीवनके विषयमें कोअी नया सिद्धांत अलापता है तो मुझे अुसपर हँसी आती है। 'मैंने सुना है चरित्रका अच्छा नहीं।' 'बेफिक्रीमें चरित्र अच्छा रह ही कैसे सकता है ?' समाजमें रहो और समाजके कर्तव्यों और मर्यादाओंका पालन करो तब पता चले। अिस वार्तालापमें जहाँ मेहताके चरित्रको प्रकाशित किया जाता है, वहाँ रायसाहब और खन्नाका चरित्र भी प्रकट हो जाता है।

अुपन्यासोंके चरित्र-चित्रणके सम्बन्धमें अेक बात और ध्यान देने योग्य है। अुपन्यासकार अपने पात्रोंके विषयमें सब कुछ अेक ही बार न कह दे। अुसके पात्रोंके चरित्रका विकास क्रमशः हो। अैसा करनेसे पात्रोंका जीता-जागता और चित्ताकर्षक चित्र पाठकोंके सामने अुपस्थित किया जा सकता है। अिससे पाठकोंके चित्तको आकर्षित किया जा सकता है। पाठक सोचता है, फिर आगे क्या हुआ ?

भाषा भी चरित्र-चित्रणको सफल बनानेमें बहुत बड़ा हाथ बँटाती है। मुहावरेदार और अुपमापूर्ण, सुन्दर भाषा सफलताके साथ पात्रोंके चरित्रोंपर प्रकाश डालती है। भाषाकी सुन्दरताका अर्थ है—— अुपयुक्त शब्दोंका प्रयोग और स्पष्ट भाव-व्यंजना।

दो प्रकारके पात्र या चरित्र होते हैं। अेक तो वे जो किसी श्रेणी या वर्ग विशिष्टका प्रतिनिधित्व करते हैं। अुपन्यास गोदानमें होरी अुस किसान वर्गका प्रतिनिधित्व करता है जो निरन्तर पिसते और शोषित होते हैं। दूसरे वे पात्र होते हैं जो अपने आपका प्रतिनिधित्व करते हैं। अैसे पात्र व्यक्तित्व प्रधान होते हैं तथा जन-साधारणसे कुछ विलक्षण होते हैं अथवा

किन्हीं विशेष गुणोंको लिअे हुअे होते हैं। अुदाहरणार्थ शरतके 'श्रीकांत' और अज्ञेयके 'शेखर' को हम ले सकते हैं।

कथोपकथनसे घटनाओंको गति-शील बनानेमें सहायता मिलती है। पात्रोंके जिस पारस्परिक या आपसी बातचीतसे कथा-वस्तु आगेको बढ़ती है तथा पात्रोंकी चारित्रिक विशेषताओंका पता लगता है अुसे ही कथोपकथन कहते हैं। कथोपकथन द्वारा अुपन्यासमें आकर्षण और मनोरंजनकी भी अभिवृद्धि होती है। कथोपकथनमें बाहरी अथवा दिखाअू, अनावश्यक और नीरस बातें तो बिलकुल ही नहीं होनी चाहिअे। अुपयुक्त बातें भी अुसी हदतक होनी चाहिअे कि जहाँतक वे वस्तु-विकासमें सहायक हों। कहनेका तात्पर्य यह कि कथोपकथन बहुत विस्तृत न हो जिससे अुपन्यास लेखक अुपदेशक समझा जाने लगें; अन्यथा पाठक अूब जाअेंगे। जो कथोपकथन न तो कथावस्तुको विकसित करे और न पात्रोंकी विशेषताओंका ही प्रदर्शन करे वह अुपन्यासके सर्वथा अनुपयुक्त है।

कथोपकथन

अुपन्यासोंको स्वाभाविक बनानेके लिअे देश, काल तथा वातावरणका पूरा-पूरा ध्यान रखना होता है। अुपन्यासके पात्र किसी विशिष्ट देश, काल या वातावरणके होते हैं। अतः जिस देश काल तथा वातावरणके वे पात्र हों अुन्हींके अनुरूप अुनका वर्णन किया जाना चाहिअे। देश, काल, वातावरणका विशेष महत्व अैतिहासिक अुपन्यासोंमें होता है। जिस कालका अुपन्यासमें वर्णन अिष्ट होता है अुस समयकी धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितिओंका तथा अुस समयके मुख्य-मुख्य रीति-रिवाजों, रहन-सहनका ढंग, वेश-भूषा व आचार-विचारका ध्यान रखना होता है।

देश-काल तथा वातावरण

अुपन्यासमें देश-काल-वातावरणका वर्णन वहीं तक अुचित है, जहाँतक वह कथा-प्रवाहमें सहायक हो।

अुपन्यासका अुद्देश्य मनोरंजन तो अवश्य है लेकिन आज अेकमात्र वही अुद्देश्य नहीं रह गया है। मनोरंजनके साथ-साथ अुसका अेक विशिष्ट लक्ष्य भी होता है। अेकमात्र मनोरंजनकी दृष्टिसे लिखे गअे अुपन्यासोंको अुत्कृष्ट नहीं माना जाता। अपने विशिष्ट अुद्देश्यकी सिद्धिके लिअे ही लेखक अुपन्यासमें अनुरूप पात्रोंकी अवतारणा करता है और नायक अिन विचारोंका प्रतिनिधित्व करता है।

अुद्देश्य

अुपन्यास-लेखकका अुद्देश्य सदा महान होना चाहिअे। अुद्देश्य अैसा हो जो अपनी महानताके कारण सहज ही में पाठकको प्रभावित कर ले। अपने अुद्देश्यको व्यक्त करनेकी शैली भी रोचक तथा प्रभाव अुत्पन्न करनेवाली हो।

अैयारी और तिलस्मी अुपन्यासोंको छोड़कर बाकी सभी अुपन्यासोंमें कुछ-न-कुछ सत्य अवश्य ही रहता है। क्योंकि जो कुछ कभी हुआ हो अथवा नित्य होता हो वही केवल सत्य नहीं है; किन्तु जो कुछ हो सकता है, वह भी सत्य है। और यही सुंदर है। अुपन्यासमें वास्तविकता और कल्पना दोनोंकी समानरूपसे आवश्यकता है। न तो कोरी कल्पनासे ही काम चल सकता है और न निरी वास्तविकतासे ही। वास्तविकतासे आजकल कुछ लोग यथार्थका अर्थ लगाते हैं। यह विचारधारा अितनी तेजीसे और विकृत-रूपमें फैलती जा रही है कि कलाके परदेका कोअी अर्थ ही नहीं रह गया है। जीवनकी कमियों अेवं कमजोरियोंको नग्न-रूपमें हमारे सामने रखनेका जो प्रयत्न जारी है अुससे यह भी शंका होने लगती है कि क्या वह समाजके लिअे कल्याणकर होगा! समाजकी जिन कमजोरियोंका दिग्दर्शन कराया जाता है अुसे यदि कलाका आवरण पहनाकर ही पाठकके सामने रखा जाअे और अुस

अुपन्यासमें वास्तविकता

जोरीको दूर करनेका भी ढंग कलात्मक हो तो अधिक वाँछनीय होगा। यथार्थ-चित्रणके नामपर समाजकी कमजोरियोंका ही अेकमात्र चित्रण हितकर न होगा।

प्रबंध-काव्य और अुपन्यास बहुत नजदीक-नजदीककी वस्तु हैं क्योंकि दोनोंमें अुसका विषय प्रधान होता है। अिसी दृष्टिसे किसी लेखकने कहा है,"**अुपन्यासोंको गद्यमय प्रबंध-काव्य** (Epic in Prose) **तथा महाकाव्योंको भी अुपन्यास** (Novel in Verse) **कहा जा सकता है।**" दोनों ही में वर्णनकी प्रधानता होती है। दोनोंमें जीवनके विविध अंगोंका विविधतापूर्ण प्रदर्शन किया जाता है।

अुपन्यास और कविता

यद्यपि अुपन्यास और महाकाव्यमें अितनी समानता है फिर भी, महाकाव्य अुपन्याससे भिन्न वस्तु है। महाकाव्य किसी महान् व्यक्तिकी महानताका वर्णन करनेके लिअे ही लिखा जाता है। किन्तु अुपन्यास तो साधारणसे साधारण व्यक्तियोंकी अत्यन्त साधारण घटनाको लेकर भी लिखा जा सकता है, लिखा जाता है। '**अुपन्यासकारकी कल्पनाके पंख कवि-कल्पनाकी भाँति अुन्मुक्त नहीं होते, अुसके परोंमें यथार्थताका बंधन होता है।**'

कविताको समझनेके लिअे, अुसका आनन्द प्राप्त करनेके लिअे अेक विशेष प्रकारकी बुद्धि, संस्कृत मन तथा भावुक हृदयकी आवश्यकता होती है, वह सर्व साधारणके समझनेकी वस्तु नहीं है। पर अुपन्यासमें यह बात नहीं है। यही कारण है कि सर्व-साधारण लोग भी अुपन्यासको पढ़नेमें रस लेते हैं।

नाटकपर विचार करते समय हम देखेंगे कि नाटक कोअी अकेली स्वतंत्र कला नहीं है। वह तो कलाओंका अेक समूह मात्र है। पर अुपन्यासमें अैसी बात नहीं है। अुपन्यासका आनन्द अुसीमें निहित होता है। नाटक लेखक नाट्य-शास्त्रके अनेक नियमोंसे जकड़ा रहता है। वह अपनी ओरसे अुसमें कुछ नहीं कह सकता। अुसे जो भी कुछ कहना होता है वह

अुपन्यास और नाटक

पात्रोंके मुँहसे ही कहला सकता है। अपने मनके अनुसार वह अनावश्यक पात्रोंकी अवतारणा नहीं कर सकता। अुपन्यासमें लेखक अपने पात्रोंके द्वारा कहलवानेके अतिरिक्त स्वयं भी बहुत कुछ कह सकता है। अिस तरह **'नाटक, साहित्यका सबसे बँधा रूप और अुपन्यास सबसे खुला रूप है।'**

कुछ लोगोंकी अैसी धारणा है कि कहानीका विकसित रूप ही अुपन्यास है, किन्तु बात अैसी नहीं है। कहानी और अपन्यासमें केवल आकारका ही नहीं, प्रकारका भी अन्तर है। कहानीके छोट क्षेत्रमें जीवनकी अुतनी विस्तृत विवेचना नहीं हो सकती जितनी अुपन्यासमें होती है। मानव-चरित्रके किसी अेक पहलूपर प्रकाश डालने अथवा किसी घटना या वातावरणकी सृष्टिके लिअे कहानी लिखी जाती है।

अुपन्यास और कहानी

अुपन्यासोंमें बहुतसे विषयोंका समावेश होता है, पर कहानीमें नहीं। अुसका केवल अेक ही विषय, अेक ही घटना होती है। कहानीमें घटना, क्रमसे विकसित होकर अेक अंतिम सीमापर पहुँचती है, जिसे घटनाओंकी तीव्रतम स्थिति कहते हैं और वहीं कहानीका अन्त होता है। यद्यपि कथानककी आवश्यकता कहानी और अुपन्यासमें दोनों रूपसे है तथापि कथानक पर रचे हुअे स्वरूपमें विभिन्नता होती है। कहानियोंमें अुनके पात्रोंका और हमारा बहुत ही थोड़े समयके लिअे साथ होता है। हमें अुनके बहुत ही थोड़े कार्यों और व्यवहारों आदिका परिचय मिलता है। हमारे चित्तपर अुनके अध्ययनसे जो प्रभाव पड़ता है वह भी अपेक्षाकृत बहुत ही अल्प होता है।

अुपन्यास और अितिहास दोनोंका मानव जीवनसे संबंध होनेपर भी अिनमें पर्याप्त अन्तर है। कब, कहाँ क्या हुआ अितिहास अिसका केवल अुल्लेख मात्र करता है। अर्थात् अितिहासमें केवल तथ्योंका वर्णन किया जाता है। अुपन्यासमें केवल तथ्योंका वर्णन-मात्र ही नहीं होता वरन् कल्पनाका आधार लिया जाता है और अिस तरह शुष्क अेवं नीरस चीजोंमें भी सरसता अुत्पन्न की जाती है।

अुपन्यास और अितिहास

अुपन्यासमें व्यक्तिको महत्ता दी जाती है अितिहासमें देश, जाति या समाजको। अुपन्यासकार व्यक्तिके अन्तरमें प्रवेश करके अुसमें निहित रहस्यको भी खोजनेका प्रयत्न करता है पर अितिहासको अिन सब बातोंसे कोअी सरोकार नहीं।

अुपन्यासके भेद

अुपन्यासोंके भेद साहित्य-मर्मज्ञोंने कअी प्रकारसे किअे हैं। अेक तो **चरित्र प्रधान** अुपन्यास, जिसमें पात्रोंकी प्रधानता होती है। घटनाका स्थान गौण रहता है। दूसरे **घटना प्रधान** अुपन्यास जिनमें घटनाओंकी प्रधानता रहती है और पात्रोंका अुपयोग घटनाचक्रके ठीक ढंगसे चलानेमें किया जाता है। चरित्र-प्रधान अुपन्यास अच्छे होते हैं क्योंकि पात्रोंके चरित्रों द्वारा मनुष्यके हृदयपर अधिक स्थायी प्रभाव डाला जा सकता है।

कअी लोग अुद्देश्योंके अनुसार अुपन्यासोंके भेद किया करते हैं। अुदाहरणार्थ सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, अैतिहासिक आदि। किन्तु यह विभाजन-प्रणाली ठीक नहीं प्रतीत होती। अुद्देश्य और प्रकारमें बहुत अन्तर होता है। अुपन्यासका प्रधान गुण ही विभाजनका आधार होना चाहिअे। अिस दृष्टिसे **चरित्र-प्रधान, घटना-प्रधान, अैतिहासिक, सामाजिक** तथा **सामयिक** ये पाँच प्रकारके अुपन्यास हो सकते हैं।

अुपन्यास साहित्यमें **चरित्र-प्रधान** अुपन्यासोंका अधिक महत्व है। अैसे अुपन्यासोंमें घटनाओंपर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। कथानक भी अधिक विस्तृत और स्पष्ट नहीं होता। पात्रोंकी रचना कथानकके आधार-पर नहीं की जाती। पात्रोंके स्वतन्त्र रहनेके कारण क्रियाका विकास पात्रों-पर अवलंबित रहता है। पात्र परिस्थितियों और घटनाओंके अधीन नहीं होते वरन् परिस्थितियाँ और घटनाअें पात्रोंके अधीन होती हैं। चरित्र-प्रधान अुपन्यासोंमें कथा-वस्तुका काम पात्रोंकी भिन्न-भिन्न विशेषताओंको यथा समय

सामने लाकर रख देना होता है। अिसलिअे आवश्यकतानुसार नअी परिस्थितियाँ पैदा करनेकी स्वतन्त्रता लेखकको होती है। अैसे अपन्यासोंमें कथानक गठित अेवं सुदृढ़ नहीं रहने पाता। स्व. प्रेमचन्दजीके अुपन्यास प्रायः चरित्र-प्रधान ही हैं। श्री जैनेंद्रकुमार, अुग्रजी, चतुरसेन शास्त्री आदिकी कृतियाँ भी अिसी कोटिमें आती हैं।

साहित्यमें **घटना-प्रधान** अुपन्यासोंकी संख्या बहुत अधिक है। अैसे अुपन्यासोंमें किसी अेक घटनाको विशेष रूपसे चित्रित किया जाता है और अुसकी पोषक अन्य अनेक गौण घटनाओंको सहायक रूपसे अुसके चारों ओर गूँथा जाता है। ये घटनाअें क्रमशः पाठकोंके सामने आती हैं और अुनकी जिज्ञासा अथवा अुत्सुकताको बढ़ाती चली जाती हैं। 'फिर क्या हुआ ?' के जाननेकी जिज्ञासा ही पाठकके हृदयमें प्रबल होती है। अिन्हीं घटनाओंपर कथानकका विकास अवलंबित रहता है।

घटना-प्रधान अुपन्यासोंमें घटनाअें चाहे साधारणसे साधारण हों, वे किसी भी आश्चर्यजनक अथवा असाधारण परिणामपर पहुँच सकती हैं। अैसे अुपन्यासोंमें कथानकका कोअी भी वैज्ञानिक स्वरूप नहीं होता। कथानकका ढाँचा तैयार करनेमें लेखककी अिच्छा या कल्पनाका ही अधिकतासे हाथ होता है। वह पाठकको घटनाओंके जालमें अुलझाअे रखकर आगेकी ओर खींचता चला जाता है और अन्तमें अेक आश्चर्यजनक परिणामपर पहुँचाकर खड़ा कर देता है। अिसलिअे अैसे अुपन्यासोंमें जीवनका चित्र बहुत ही कम मात्रामें मिलता है। जो भी कुछ होता है वह जीवनका सच्चा चित्र नहीं, कल्पनाका केवल ढाँचा मात्र होता है। अैसे अुपन्यासोंमें पात्रोंका चरित्र वैसा ही और अुतना ही होता है जितना घटनाओंको अग्रसर करनेमें आवश्यक है।

अैतिहासिक अुपन्यासोंमें अितिहासके सत्यकी रक्षा करते हुअे लेखक अुपन्यास रचनाकी ओर अग्रसर होता है। अैतिहासिक घटनाको विस्तृत रूप देकर अुसके महत्वपूर्ण अंगपर प्रकाश डालना ही लेखकका अुद्देश्य रहता

है। यदि वह अिस अैतिहासिक रसको अक्षुण्ण रख सका है तो अुसे अपने अुद्देश्यमें सफल समझना चाहिअे। अैतिहासिक अुपन्यासोंमें सबसे अधिक आदर अुसी अुपन्यासका होता है जो किसी प्राचीन काल-विशेषका सच्चा, सजीव तथा मनोरंजक चित्र हमारे सामने अुपस्थित करता है।

सामाजिक अुपन्यासोंमें जीवन या समाजके सभी अङ्गों और स्वरूपोंका समावेश होता है। सामाजिक अुपन्यास लिखना सरल कार्य नहीं है और अिसीलिअे अैसे अुपन्यास कम मिलते हैं। अिधर अैसे अुपन्यास काफी संख्यामें लिखे गअे हैं। सामाजिक अुपन्यासोंमें जिस अुपन्यासका वर्णन जितना ही ठीक और स्वाभाविक होता है वह अुपन्यास अुतना ही अच्छा माना जाता है।

सामयिक अुपन्यासोंमें जिस काल-विशेषमें अुनकी रचनाअें हो रही हैं, अुस काल विशेष की भावनाओं, गतियों तथा विचारोंका दिग्दर्शन कराया जाता है। प्रायः अैसे अुपन्यासोंमें वास्तविक जीवनके नग्न-चित्रको अंकित करते हुअे लेखक अुस आदर्श-जीवनका अुल्लेख करता है जिसकी अैसे समयमें अुसकी दृष्टिमें अुपयोगिता अेवं आवश्यकता प्रतीत होती है।

स्व. प्रेमचन्दजीके प्रायः सभी अुपन्यासोंमें समायिकताकी छाप अधिक रहती है। यही कारण है कि वे अितने अधिक लोकप्रिय हो सके हैं। वास्तवमें दरिद्र किसानोंकी जैसी दशा है, अुसीका सफल वर्णन अुनके अुपन्यासोंमें मिलता है।

वादोंके आधारपर अुपन्यास दो प्रकारके होते हैं। अेक **आदर्शवादी** और दूसरे **यथार्थवादी**। यथार्थवादी अुपन्यास चरित्रोंको पाठकके सामने अुनके यथार्थ रूपमें, नग्न-रूपमें (ज्योंका त्यों) रख देता है। मानव-चरित्रमें दुर्बलताअें होती ही हैं और यथार्थवाद हमारी अिन्हीं दुर्बलताओं, विषमताओं और क्रूरताओंका नग्न-चित्र होता है। हमें अपने चारों ओर बुराअी ही बुराअी नजर आने लगती है। परिणामतः मानव-चरित्रपरसे हमारा विश्वास अुठ जाता है।

अुपन्यासोंमें यथार्थ तथा आदर्श

दूसरी ओर अेकमात्र आदर्शवाद हमें सुन्दर आदर्शोंकी मनोरम झाँकी दिखाता है। यह चित्र वास्तविकतासे कोसों दूर होता है। किसी विद्वान समालोचकने ठीक ही कहा है कि, **'यथार्थवाद यदि हमारी आँखें खोल देता है, तो आदर्शवाद हमें अुठाकर किसी मनोरम स्थानमें पहुँचा देता है।'**

अिसलिअे वेही अुपन्यास अुच्चकोटिके समझे जाते हैं जिनमें यथार्थ और आदर्शका अुपयुक्त समन्वय हो। अैसे अुपन्यासोंको **'आदर्शोन्मुख-यथार्थवादी'** अुपन्यास कहा जा सकता है। आदर्शको सजीव बनानेके लिअे ही यथार्थका अुपयोग होना चाहिअे।

अिधरके अुपन्यासोंमें वर्तमानके सुख-दुखोंका ही चित्र अंकित करनेकी चेष्टा पाअी जाती है, पर अुनमें जो अुपन्यास स्थायी कहलाने योग्य होते हैं, अुनमें प्रतिदिनकी सुखदुखकी वासनाको अनन्तके साथ सम्मिलित करनेकी व्याकुलता भी प्रकाशित होती है।



कहानी

स्वभाव ही से मनुष्यको अेकांत नहीं भाता। वह अपनी कहना चाहता है और दूसरेकी सुनना। यह आदान-प्रदानकी प्रवृत्ति मनुष्यके जीवनमें प्रतिक्षण अेक नयी स्फूर्तिका संचार करती है। अिसीके बूतेपर वह सुख-दुख राग द्वेष आदिके घात-प्रतिघातोंको सहन करते हुअे अविरल गतिसे चलता है। आत्माभिव्यंजनाकी आधार-भूमिपर ही प्रारंभिक कथा-मंदिरका निर्माण हुआ। अपनी कहने और दूसरेकी सुननेकी रुचि ही कथा-साहित्यके जन्मका कारण है।

आत्माभिव्यंजनाके दो साधन हैं। अेक तो **पद्य** और दूसरा **गद्य**। पद्यके अंतर्गत मुक्तक, महा-काव्य और खंड-काव्यका समावेश होता है तथा गद्यके अंतर्गत अुपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध, जीवन-चरित्र, पत्र और आलोचना आदिका समावेश होता है। आजके युगमें पद्यकी अपेक्षा गद्यकी प्रधानता है और गद्यमें भी अुसके अन्य अंगोंकी अपेक्षा अुपन्यास तथा कहानीकी।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है—विश्वके समस्त साहित्यमें भारतीय साहित्यकी सर्व प्राचीनता निर्विवाद रूपसे सिद्ध है। अुसका अपना साहित्य वैदिक-साहित्यसे प्रारंभ होता है। अुपनिषद्, पुराण तथा ब्राह्मण-ग्रंथोंमें कथा साहित्यका अुत्तरोत्तर विकास होता गया। दादी और नानीका कथा-साहित्य

भारतका प्राचीन कहानी-संग्रह

अेकमात्र बालकोंके मनोरंजनके लिअे होता था। अुपनिषदोंकी कहानियां दार्शनिक सिद्धांतोंको समझनेके लिअे होती थीं।

कथा-साहित्यकी अुत्पत्ति सर्व प्रथम कहाँ और किस रूपमें हुअी, यह आज बता सकना कठिन है। किन्तु यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि विश्वके समस्त साहित्योंमें भारतीय साहित्य सर्व-प्राचीन है। अुसके प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेदमें अनेकों कथाओंका वर्णन मिलता है। समय जैसे-जैसे बदलता गया अुसीके अनुसार कहानीका रूप भी बदलता गया। कहानीका आजका रूप आधुनिक-युगकी देन है और वह अुसके प्राचीन रूपसे पर्याप्त भिन्न और विकसित है। कहानीका मौखिक रूप समान रूपसे सभी देशोंमें पाया जाता है। सभी देशोंकी बूढ़ी स्त्रियां बच्चोंके मनोरंजनके लिअे कहानियाँ सुनाती है।

प्राचीन कथा-साहित्य

कहानी, गल्प, लघु-कथा अथवा आख्यायिका अेक ही वस्तु है और अुनका रूप भी अेक ही है। पर आजकी कहानी जिस विकसित रूपमें प्राप्त है अुसकी व्याख्या करना अथवा अुसे परिभाषाके अेक निश्चित आकारमें बाँध देना कठिन है। कुछ आलोचकोंका तो यहाँ तक कहना है कि कहानीका कोअी विशेष आकार-प्रकार होता ही नहीं। अेच. जी. वेल्सका मत है कि **'कहानी वह चित्रण है जिसे साहस और कल्पनाके साथ अेक घंटेसे कममें पढ़ा जा सके।'** दूसरे लोगोंका कहना है कि **'किसी वस्तु या व्यक्ति-विशेषके परिमार्जित अेवं कलापूर्ण वर्णनका ही नाम कहानी है।'** दार्शनिक आलोचकोंने तो यहाँ तक कहा है कि **'जो किसी सद्वस्तु, सत्तत्व, सत्सिद्धान्त या सद्व्यवहारका सच्चा प्रतिनिधित्व करती हो वही कहानी है।'** जो भी हो, यह संपूर्ण विश्व-जीवन ही अेक कहानी है। संभवतः अिसी कारण साहित्यकी कहानी भी रोचक लगती है।

कहानीकी परिभाषा

कहानीका निश्चित आकार बाँधना अिसलिअे भी तो कठिन है कि वह निरंतर विकासशील है और दूसरे अुसके मूलमें अनेक विभिन्न तत्व (Elements) काम कर रहे हैं जोकि परिभाषामें नहीं बँध सकते। अिसीलिअे प्रत्येक आलोचक या लेखकने अपने-अपने दृष्किोणके अनुसार कहानीकी परिभाषा की है। गल्प-साहित्यको आधुनिकतम रूप प्रदान करनेवालोंमेंसे अमेरिकाके सुप्रसिद्ध [1]गल्पकारने कहानीकी परिभाषा अिस प्रकार की है—

'छोटी कहानी अेक अैसा आख्यान है जो अितना छोटा है कि अेक बैठकमें पढ़ा जा सके और जो पाठकपर अेक ही प्रभावको अुत्पन्न करनेके लिअे लिखा गया हो। अुसमें अैसी बातोंको त्याग दिया जाता है जो अुसकी प्रभावोत्पादकतामें बाधक हों। वह स्वतः पूर्ण होती है।'

हिन्दीके सुप्रसिद्ध कथाकार मुंशी प्रेमचंद कहानीकी रूप-रेखा अिस प्रकार निर्धारित करते हैं **'गल्प अैसी रचना है जिसमें जीवनके किसी अेक अंग या किसी अेक मनोभावको प्रदर्शित करना ही लेखकका अुद्देश्य रहता है। अुसके चरित्र अुसकी शैली, अुसका कथा-विन्यास सब अुसी अेकभावको पुष्ट करते हैं। अुपन्यासकी भाँति अुसमें मानव-जीवनका संपूर्ण बृहद्‌रूप दिखानेका प्रयास नहीं किया जाता। न अुसमें अुपन्यासकी भाँति सभी रसोंका सम्मिश्रण होता है। वह अैसा रमणीय अुद्यान नहीं जिसमें भाँति-भाँतिके फूल, बेल-बूटे सजे हुअे हैं, बल्कि अेक गमला है जिसमें अेक ही पौधेका माधुर्य अपने समुन्नतरूपमें दृष्टिगोचर होता है।'**

बा. श्यामसुन्दरदासने कहानीमें नाटकीय तत्वोंको प्रमुखता प्रदान करते हुअे लिखा है कि **'आख्यायिका अेक निश्चित लक्ष्य या प्रभावको लेकर नाटकीय आख्यान है।'**

---

[1]अेडगर अेलिन पो

कहानी वस्तुतः अिन सभी परिभाषाओंमें निर्दिष्ट की जाती हुअी भी अपनी विकास-शीलताके कारण स्वतंत्र है। ये सभी परिभाषाअें आधुनिक कहानीके रूपको समझनेमें सहायक मात्र हो सकती हैं। कहानीका निर्माण कुछ विभिन्न तत्वोंके आधार-पर होता है। ये साधारणतः अिस प्रकार कहे जा सकते हैं— **कथावस्तु, पात्र, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, देशकाल** तथा **वातावरण, शैली** और **अुद्देश्य**। यहाँ हम अिन्हीं आवश्यक तत्वोंपर विचार करेंगे।

कहानीके तत्व

कहानीमें वर्णित घटना तथा वस्तु या तत्वको कथा-वस्तु कहते हैं। **'कथा-वस्तु कहानीका प्राण है।'** भाषा, भाव, चरित्र-चित्रण या शैली अित्यादि सब तत्व कहानीमें विद्यमान हों, पर कथा-वस्तु न हो तो कहानी प्राण-हीन ही कही जाअेगी। कथा-वस्तुकी रचना अत्यन्त वैज्ञानिक ढंगसे होनी चाहिअे। अुसकी प्रत्येक घटना शृंखलाबद्ध हो और अुसका विकास क्रमिक हो। प्रत्येक घटनाके आगमनसे पूर्व अुसके कारणोंका विवेचन किया जाना चाहिअे। कथा-वस्तुमें परस्पर विरोधिनी घटनाअें न रहें। प्रत्येक घटनाका समान विस्तार हो। घटनाओंका क्रम स्वाभाविक होना चाहिअे तथा कथा-वस्तुका परिणाम घटनाओं तथा परिस्थितियोंके अनुकूल होना चाहिअे। कथा-वस्तुमें घटनाओंकी प्रमुखता होती है।

कथा-वस्तु

कथा-वस्तुमें व्यर्थकी बातोंके समावेशकी कतअी गुंजाअिश नहीं होती। अतः अुसमें अनावश्यक घटनाओं, असम्बन्धित तथ्यों और अस्वाभाविकताका समावेश नहीं होना चाहिअे।

कहानीका प्लॉट (कथा-वस्तु) जीवनकी अत्यंत साधारणसे-साधारण घटनासे लिया जा सकता है। किन्तु आवश्यकता है लेखकमें सूक्ष्म पर्यवेक्षण-शक्तिकी तथा सुंदर ढाँचा खड़ा करनेकी क्षमताकी। जीवनमें प्रतिदिन अनेक घटनाअें घटती रहती हैं; अुनमेंसे कथा-वस्तुका

चुनाव किसी भी घटनासे किया जा सकता है। सूक्ष्म पर्यवेक्षण-शक्तिके आधारपर नगण्य वस्तु भी कथा-वस्तुका आधार बन सकती है। साधारण बातोंको भी लोकोत्तर बना देना कथा-वस्तुका धर्म है।

कथा-वस्तुको निर्दिष्ट स्थानतक ले जानेमें प्रयत्नशील रहनेवाले व्यक्ति, पात्र कहलाते हैं। कथा-वस्तुको कहानीका माधुर्य कहा जा सकता है। किन्तु अुसका रसास्वादन करानेवाले पात्र ही होते हैं। पात्रोंको कथा-वस्तुका संचालक कहा जा सकता है, अिन्हींके सहारे कहानीकी कथा-वस्तु अग्रसर होती रहती है। चूँकि पात्र कथा-वस्तुके संचालक होते हैं अतः अुन्हें कथा-वस्तुके अत्यंत समीप होना चाहिअे। अुन्हें कथानकमें लीन होना है किन्तु अिसका यह अर्थ नहीं कि पात्र अपना निजी व्यक्तित्व ही न रखें। पात्र दृश्य होते हुअे भी अदृश्य और प्रस्तुत होते हुअे भी अप्रस्तुत लगने चाहिअे, तभी कहानीमें अेक रहस्य अुत्पन्न होगा और यह पाठककी जिज्ञासाको जाग्रत रखेगा। पाठक यह जाननेको अुत्सुक रहेगा कि आगे क्या हुआ ? परिणामतः कहानीमें आनन्दकी सृष्टि होगी।

पात्र

आजकी कहानियोंमें चरित्र-चित्रणको कथानकसे भी अधिक महत्व मिलता जा रहा है। कहानियोंमें पात्रके संपूर्ण चरित्रपर प्रकाश नहीं डाला जाता वरन् अैसे ही अंशको अुद्घाटित अेवं प्रकाशित किया जाता है, जिससे अुसका पूरा व्यक्तित्व चमक अुठे। आजकल वही कथा सर्वश्रेष्ठ समझी जाती है, जिसमें लेखक पात्रोंका चरित्र-चित्रण करता हुआ किसी मनोवैज्ञानिक सत्यकी व्याख्या करे। सफल चरित्र-चित्रणके लिअे लेखकको मनोविज्ञानका विशेष ज्ञान होना चाहिअे तभी वह पात्रोंकी आंतरिक वृत्तियोंमें प्रविष्ट होकर अुसके विशद अध्ययन द्वारा सूक्ष्म-चित्रण करनेमें समर्थ हो सकेगा। यद्यपि पात्र लेखककी कल्पनाकी अुपज होते हैं फिर भी अुनका अपना अेक स्वतंत्र व्यक्तित्व होता

चरित्र-चित्रण

है। वे लेखकके हाथकी कठपुतली-मात्र नहीं होते। यदि अैसा ही हो तो वे व्यर्थ अेवं अरुचिकर होंगे। अिस संबंधमें अेक अंगरेजी [1] अुपन्यासकारका मत पठनीय है **'मेरे पात्र मेरे वशमें नहीं वरन् मेरी लेखनी अुन पात्रोंके वशमें हो जाती है।'** वस्तुतः पात्रोंके स्वाभाविक और सजीव-चित्रणके लिअे लेखकको अपना व्यक्तित्व पात्रोंपर थोपना नहीं चाहिअे।

चरित्र-चित्रण चार प्रणालियों द्वारा किया जा सकता है— **१. वर्णन-द्वारा २. संकेत द्वारा ३. वार्तालाप द्वारा ४. घटनाओं द्वारा।**

१. वर्णन द्वारा किया गया चरित्र-चित्रण प्रत्यक्ष या विश्लेषणात्मक (Direct or Analytic) कहलाता है। **विश्लेषणात्मक** ढंग द्वारा लेखक स्वयं पात्रोंके चरित्रपर प्रकाश डालता है—

'वह पचास वर्षसे अूपर था। तब भी युवकोंसे अधिक बलिष्ठ और दृढ़ था। चमड़ेपर झुर्रियाँ नहीं पड़ी थीं। वर्षाकी झड़ीमें, पूसकी रातोंकी छायामें, कड़कती हुअी जेठकी धूपमें, नंगे शरीर घूमनेमें वह सुख मानता था। अुसकी चढ़ी मूँछें विच्छूके डंककी तरह, देखनेवालोंकी आँखोंमें चुभती थीं। अुसका साँवला रंग, साँपकी तरह चिकना और चमकीला था। अुसकी नागपुरी धोतीका लाल रेशमी किनारा दूरसे भी ध्यान आकर्षित करता था। कमरमें बनारसी सेल्हेका फेंटा, जिसमें सीपके मूठका बिछुआ खोंसा रहता था। अुसके घुँघराले बालोंपर सुनहले पल्लेके साफेका छोर अुसकी चौड़ी पीठपर फैला रहता। अूँचे कन्धेपर टिका हुआ चौड़ी धारका गँडासा, यह थी अुसकी धज। पंजोंके बल जब वह चलता, अुसकी नसें चटचट बोलती थीं। वह गुंडा था।' (प्रसाद)

२. चरित्र-चित्रणमें वर्णनात्मक प्रणालीकी अपेक्षा **संकेतात्मक** प्रणाली आजकल अधिक अुपयुक्त और कलात्मक मानी जाती है। लेखक चरित्र-चित्रणके अिस प्रकारमें स्वयं कुछ न कहकर संपूर्ण परिणामसे अवगत

[1] विलियम थेकरे

होनेका अुत्तरदायित्व पाठकपर ही छोड़ देता है । वह तो केवल पात्रोंकी चारित्रिक वृत्तियोंका ही अुल्लेख मात्र करता है—

'वह अभी-अभी जागे थे और पै-दर-पै जँभाअियाँ लेते हुअे पूरी तरह सचेत होनेके लिअे समाचार-पत्र और प्यालीभर चायका अिंतजार कर रहे थे । सूर्य क्षितिजकी ओटमें से अुभर आया था और अुसकी सुनहली रश्मियाँ मोर पंखकी तरह आकाशपर बिखर रही थीं । पूर्वकी ओरकी तमाम खिड़कियाँ सोनेकी तरह जगमगा रही थीं, परन्तु यह चमक केवल खिड़कियोंके बाहर ही थी। कमरोंके भीतर पहुँचनेतक यह प्रकाशन भी अीश्वरदासके जीवनकी भाँति मैला और ज्योति-शून्य हो जाता था । "

३. **वार्तालाप** द्वारा चरित्र-चित्रणका ढंग परोक्ष या नाटकीय (Indirect or Dramatic) चरित्र-चित्रणके लिअे अधिक अुपयुक्त है । अिसमें लेखकका पात्रोंसे कोअी सरोकार नहीं होता । पात्रोंकी आपसी बातचीतसे ही अेक दूसरेके चरित्रपर प्रकाश पड़ता चलता है । अेक पात्रका कथन दूसरे पात्रके चरित्रकी विशेषताओंका अुद्घाटन करता है । जहां पात्रोंके कथन अेक दूसरे-की चरित्रगत विशेषताओंका अुद्घाटन करते हैं वहां अुनकी कथन-शैली, भाव-भंगी और भाषा अुनकी अपनी विशेषताओंका भी दिग्दर्शन करा देती है । लेखक अिसमें अपने आप कुछ नहीं कहता ।

व्यर्थके लंबे वार्तालाप निर्जीव, शुष्क और बोझिल हो जाते हैं । प्रेमचंदकी किन्हीं-किन्हीं कहानियोंमें वार्तालापका बहुत ही सुंदर ढंग अपनाया गया है ।

४. वैसे तो कहानीमें कोअी न कोअी **घटना** होती ही है, किन्तु साधारणतः छोटी-छोटी घटनाअें ही पात्रोंके चरित्र-चित्रणमें सहायक होती हैं । ये छोटी-छोटी घटनाअें मुख्य घटनाकी पूरकके रूपमें कार्य करती हैं । अतः अिन घटनाओंको न तो अप्रासंगिक ही होना चाहिअे और न बहुत लंबी ही । कहनेका सारांश यह कि मुख्य घटनाके साथ अिनका पूर्ण सामञ्जस्य हो ।

चरित्र-चित्रणमें वार्तालाप और घटनाओंका यदि सम्मिश्रण हो तो अधिक सुंदरता आ जाती है। अिससे कथाका घटना-प्रवाह भी अबाध बना रहता है और पात्रोंके चरित्रका क्रमिक-विकास भी अत्यंत सुंदर ढंगसे होता चलता है।

गति,कथा-वस्तुका प्राण है और अुसकी प्राप्तिका साधन है—कथोपकथन। कथोपकथन पात्रोंके चरित्र-चित्रणमें तो सहायक होता ही है किन्तु कथानकका भी वह अेक आवश्यक गुण है, क्योंकि कथाकी स्वाभाविकताके लिअे कथोपकथनका समावेश आवश्यक है। कथोपकथन ही अेक अैसा साधन है जिसके जरिअे हम पात्रोंके दृष्टिकोण, आदर्श तथा अुद्देश्यसे परिचित हो सकते हैं। अतअेव कथोपकथन स्वाभाविक अेवं अुपयुक्त होना चाहिअे। कथोपकथनमें रोचकता लानेके लिअे अुसमें अभिनयात्मकता भी हो। कथोपकथन पात्रोंके व्यक्तित्वके योग्य अेवं अनुकूल होना चाहिअे।

कथोपकथन

कहानीमें **कथोपकथन** चरित्र-चित्रण करनेमें, घटनाओंको गतिशील बनानेमें तथा भाषा-शैलीका निर्माण करनेमें सहायक होता है। कथोपकथनसे कहानीमें प्रवाह, सजीवता और अुत्सुकताका निर्माण होता है अतः अुसमें फालतू अंश नहीं होने चाहिअे। पात्रोंके मुखसे लंबे-लंबे अभिभाषण करानेसे कथाका प्रभाव भंग होनेका डर रहता है तथा कथानकमें शिथिलता आजानेकी संभावना रहती है। अुपन्यासके कथोपकथनकी अपेक्षा कहानीके कथोपकथनमें अधिक संयम और नियंत्रणकी आवश्यकता होती है। संक्षिप्त अेवं गठा हुआ कथोपकथन कहानीको गतिशील बनानेमें अधिक सफल सिद्ध होता है।

घटनाओंके घटित होनेके स्थान और समयको **'देश-काल'** कहते हैं। अुपन्यासमें तो अिसका चित्रण होता ही है, कहानीमें भी अुसकी आवश्य-

कता रहती है; यद्यपि अुससे कम। कहानीकारको अपनी कहानीमें स्वाभाविकता लानेके लिअे देश-कालका पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है। अितिहास या प्रकृति-विरोधी वातावरण बनाकर लेखक अुपहासका पात्र बनता है। अिसलिअे देश-काल तथा वातावरणके चित्रण बहुत स्वाभाविक, आकर्षक और यथासंभव पात्रोंकी मानसिक परिस्थितिके अनुकूल होने चाहिअे। विशेषतः अैतिहासिक कहानियोंमें तो देश-कालका ज्ञान और भी आवश्यक है, अन्यथा कहानीमें स्वाभाविकताका अभाव हो जाअेगा। अुसके पात्रोंका वर्णन यदि देश-कालके अनुरूप न होगा तो निश्चय ही अुसका वर्णन मजाकका विषय बन जाअेगा। रामायण-कालीन पात्रोंको यदि कोट, पैंट, हैटकी वेशभूषामें खड़ा कर दिया जाअे तो कितना अस्वाभाविक अेवं देशकाल वातावरणके कितना विरुद्ध होगा!

देश-काल तथा वातावरण

कहानीके सभी तत्वोंसे वर्णन-शैलीका संबंध होता है। वर्णन-शैली ही में लेखक अपनेको सबसे अधिक प्रतिबिम्बित करता है। अिसके द्वारा लेखक पाठकके हृदयपर अपनी अमिट छाप डालता है। कहानीकी वर्णन-शैली अत्यन्त आकर्षक, प्रवाहमयी और धारावाहिक होनी चाहिअे। अपनी वर्णन-शैलीके जरिअे ही लेखक गूढ़से गूढ़ भावनाओं और सूक्ष्मसे सूक्ष्म अनभूतियोंकी सफल अभिव्यक्ति कर सकता है। वर्णन शैलीकी अुत्कृष्टताके लिअे भाषा **सजीव और मुहावरेदार** हो। भाषाकी सजीवता और शक्तिमत्ता तथा कथामें गतिशीलता अुत्पन्न करती है। सजीव वर्णन-शैलीके लिअे लेखकमें वर्णन करनेकी शक्ति (Power of Description) तथा विवरण-शक्ति (Power of Narration) दोनोंकी समान रूपसे आवश्यकता है।

वर्णन-शैली

कहानीमें वर्ण्य-विषयोंके अनुसार लेखन-शैलीमें परिवर्तन होता जाता है। व्यंग्य-प्रधान कहानियोंमें व्यंग्यपूर्ण शैली ही अपनाअी जाअेगी। भावात्मक तथा वर्णनात्मक कथाओंमें भावुकता तथा वर्णनकी प्रधानता होगी।

किन्तु अिसका यह अर्थ नहीं कि अिन नियमोंके बंधनमें लेखककी अपनी स्वतंत्र सत्ताका बिलकुल ही लोप हो जाता हो। लेखक अपनी वैयक्तिक रुचि अेवं आदर्शोंके अनुरूप ही भाषा तथा वर्णन-शैलीका निर्माण करता है। सर्वश्री स्व.प्रसादजी अेवं प्रेमचंदकी शैली व्यक्तिगत शैलियोंके सुंदर नमूने हैं।

कहानी लिखनेकी कुछ प्रमुख शैलियाँ हैं—**अैतिहासिक, चरित्र-प्रधान,** तथा **पत्र-शैली**। **अैतिहासिक-शैलीमें** लेखक वास्तविक घटनाओंसे परे बैठकर अुन सबका अेक तटस्थ दर्शककी भाँति वर्णन करता जाता है। अिसमें नाटकीय ढंग भी अपनाया जा सकता है। यह ढंग अेक विशेष रोचकता पैदा कर देता है।

कुछ कहानियाँ **चरित्र-प्रधान** शैलीको अपनाकर लिखी जाती हैं। अिस शैलीके अंतर्गत लिखी जानेवाली कहानियोंमें पात्र स्वयं अपनी कथा अपने मुखसे कहते हैं। अिस शैलीमें पात्रोंके विस्तार तथा विकासको कम स्थान है।

कुछ कहानियाँ **पत्रात्मक** ढंगपर भी लिखी जाती हैं, किन्तु अैसी कहानियोंका अभी अधिक प्रचार नहीं हो सका है। अिसमें कहानीकी गतिको कायम रखनेके लिअे लेखकको विशेष प्रयत्न करनेकी आवश्यकता होती है।

डायरियोंकी शैलीमें भी कुछ कहानियाँ लिखी गअी हैं यद्यपि वे अभी बहुत ही कम हैं।

अन्य विशेष बातें

कहानीका शीर्षक कहानीपर अेक अच्छा प्रभाव डालता है। अतः कहानीका शीर्षक छोटा, विषयका द्योतक, विषयसे सीधा संबंधित, रोचक तथा प्रभावशाली होना चाहिअे। शीर्षकका चुनाव कहानी लेखककी बुद्धिमत्ताका द्योतक है। अधिकांशतः लंबे शीर्षक पसंद नहीं किअे जाते। ' दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी ' जैसे लंबे शीर्षक अुचित नहीं जँचते।

१. शीर्षक

कहानीका **प्रारंभिक भाग** अैसा लिखा जाना चाहिअे कि अुसे पढ़ते ही पाठक मुग्ध हो जाअे। प्रारंभिक भागमें भी अुसका पहला वाक्य अत्यंत मार्मिक होना चाहिअे। किसी लेखकने ठीक ही कहा है—

२. प्रारंभ व प्रस्तावना।

"**कहानीका प्रारंभिक वाक्य-समूह पाठकोंके लिअे ग्रंथकार-का परिचय-पत्र है।**" कहानीका यह प्रारंभिक अंश कहानीसे पूर्ण सामञ्जस्य रखता हो। अैसा न हो कि वह कहानीके अन्य अंशसे अेकदम अलग ही नजर आअे। अुसका अन्य अंशके साथ पूरा तारतम्य होना आवश्यक है। कहानीके अिस प्रारंभिक अंशमें कहानीका अुद्देश्य सन्निहित होना चाहिअे। प्रारंभिक अंशको सफल बनानेके लिअे प्राय: वार्तालाप, संकेत अथवा विवरणात्मक-शैलीका आश्रय लिया जाता है।

कहानीके प्रारंभिक भागमें जिसे प्रस्तावना कहा जा सकता है, घटनाओंका अुत्थान प्रारंभ होता है, जो मुख्यांशमें विकासको प्राप्त होकर चरम-सीमापर पहुँचता है। अिस विकासमें लेखकको यह ध्यान रखना चाहिअे कि वह पात्रोंकी स्थिति और चरित्रोंके अनुकूल हो।

३. मुख्यांश

संघर्षका अप्राकृतिक अुद्गम पाठकमें कहानी और अुसके वातावरणके प्रति विश्वास नहीं रहने देता। कहानीके अिस अंशमें कौतूहलकी जो सृष्टि होती है वह अितनी स्पष्ट न हो कि पाठक पहलेसे ही समझ जाअे कि आगे चलकर घटनाका स्वरूप क्या होगा? कौतूहलका फल स्पष्ट न रहनेसे कहानीकी अुत्सुकता बनी रहती है, अुसकी रक्षा करना कहानी लेखकका कर्तव्य है। कहानीके विकासका सुंदर अुदाहरण हमें श्री चतुरसेन शास्त्रीकी 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी' शीर्षक कहानीमें देखनेको मिलता है।

क्लाअिमेक्स (Climax) में घटनाअें पाठकके औत्सुक्यको अुच्चतम सीमा पर पहुँचा देती हैं। जिस परिस्थिति, घटना और संघर्षका प्रारंभ प्रस्तावनासे होकर मुख्यांशमें वृद्धिको प्राप्त करता है, वह क्लाअिमेक्समें आकर चरम-सीमाको प्राप्त कर लेता है। अिस स्थिति पर पहुँचकर पाठकके

४. क्लाअिमेक्स

कुतूहलका चमत्कारिक ढंगसे अंत प्रारंभ होता है। कुछ लोग चरम-सीमापर ही कहानीका अंत कर देते हैं। वैसे देखा जाअे तो कहानियोंमें समाप्तिपर बहुत अधिक ध्यान देना चाहिअे। यदि प्रारंभमें कथानक बहुत अच्छी तरहसे बढ़ाया जाअे और अंतमें अुसे यों ही छोड़ दिया जाअे तो कथानकके प्रारंभिक भागका सारा सौंदर्य नष्ट हो जाअेगा। अतः यह अत्यंत आवश्यक है कि जिस सावधानीके साथ कहानीका प्रारंभ किया जाता है वही सावधानी अुसकी समाप्तिमें भी हो। जिस कहानीमें अंत होनेसे पहले ही पाठकको अुसके परिणामका ज्ञान हो जाअे अुसमें कलाका अभाव माना जाता है। और अिसीलिअे जनतामें अैसी कहानियोंका आदर होता है जिनका परिणाम या अंत आकस्मिकसा हो। पर वह आकस्मिकता अस्वाभाविक न हो। प्रेमचंदजीकी कअी कहानियोंमें हमें मनोहर अंत देखनेको मिलते हैं।

कहानी और अुपन्यास

कहानी और अुपन्यासके मूलतत्वोंका मिलान करनेपर हमें यह पता लगेगा कि दोनोंमें समान तत्व कार्य कर रहे हैं फिर भी दोनोंके मूलमें अथवा अुद्देश्यमें भेद भी है। यह भेद कहानी और अुपन्यासको अेक दूसरेसे अलग रखे हुअे है।

कहानी और अुपन्यासमें सबसे बड़ा अन्तर तो आकारका है। आकारके अिस अन्तरके विषयमें कहा गया है कि कहानी जीवनके केवल अेक भागकी झाँकी मात्र है और अुपन्यास जीवनकी विविधताओंका विस्तृत प्रदर्शन। किन्तु कहानीकी यह झाँकी अपने-आपमें सर्वथा पूर्ण होती है।

कहानी और अुपन्यासमें केवल आकारका ही नहीं, प्रकारका भी अंतर है। कहानीमें अुपन्यासकी-सी अेकरूपता नहीं होती, क्योंकि कहानीका कलेवर बहुत छोटा होता है। अिसके फलस्वरूप कहानीमें न तो प्रासंगिक-कथाअें होती हैं और न वातावरण व देश, कालकी परिस्थितियोंका विस्तार ही। कहानीमें अुपन्यासकी-सी जटिलता नहीं होती। वह अुपन्यासकी अपेक्षा सरल होती है।

कहानीमें कथानक, चरित्र-चित्रण, शैली आदि विभिन्न तत्वोंमेंसे किसी अेकको ही प्रधानता दी जा सकती है, अिन सभीको अेक साथ नहीं। किन्तु अुपन्यासमें कथा-वस्तुके अंतर्गत अिन सभीका समावेश किया जा सकता है।

कहानीमें चूँकि कथन-शैलीका बहुत अधिक महत्व होता है अतः अुसमें अुपन्यासकी अपेक्षा काव्यत्वकी मात्रा अधिक रहती है।

संक्षेपमें कहनेका तात्पर्य यह है कि कहानी अपनी प्रभावोत्पादकता, संक्षिप्तता, अेकध्येयता तथा अनुभवकी तीव्रताके कारण अुपन्याससे सर्वथा स्वतन्त्र सत्ता रखती है।

नाटक

हम यह देख चुके हैं कि काव्य मोटे रूपसे दो भागोंमें बाँटा गया है। अेक दृश्य और दूसरा श्रव्य। दृश्य काव्य वह है जो देखा जा सके अर्थात् जिसका अभिनय किया जा सके। यद्यपि दृश्य-काव्यको नाटक कहा जाता है, तथापि वस्तुतः यह रूपकके अनेक भेदोंमेंसे अेक है। रूपकके लिअे रूढ़ हो जानेके कारण अिसका यह नाम भी प्रचलित हो गया।

परिभाषा [1]'**अेक व्यक्तिका दूसरे व्यक्तिपर आरोप करनेको**' रूपक कहते हैं। नटपर जब अन्य पात्रोंके रूपका आरोप किया जाता है तो रूपक बनता है। अिससे यह मालूम होता है कि काव्यके अिस अंगमें दूसरेकी नकल करनेकी प्रवृत्ति छिपी हुअी है। और अिसीलिअे प्रत्येक नाटकके खेलनेमें किसी न किसीके कार्योंकी नकल करनी पड़ती है। नाटक शब्दकी व्युत्पत्ति संस्कृतकी '**नट्**' धातुसे हुअी है, जिसका अर्थ है सात्विक भावोंका प्रदर्शन। चूंकि नाटकका संबंध नटसे (अभिनेतासे) आता है। अतः भरतमुनिके सिद्धांतके अनुसार [2]'**अुसकी भिन्न-भिन्न अवस्थाओंके अनुकरण**' का नाम नाटक है। कुछ लोगोंने नाटककी व्याख्या करते हुअे लिखा है कि [3]'**सात्विक भावोंके प्रदर्शनको नाटक कहते हैं**।

---

[1] रूपारोपात्तुरूपकम्   [2] अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्

[3] नाट्यमिति च 'नट अवस्यंदने अिति नटेः किंचित् चलनार्थत्वात् सात्विक बाहुल्यम्। अतअेव तत्कारिषु नट व्यपदेशः।'

अुपन्यास और कहानीकी ही भाँति नाटकका भी संबंध कथात्मक साहित्यसे ही है। अतः कहानी, अुपन्यास और प्रबंध-काव्य अुसके सजातीय ही हैं। चूँकि नाटकमें गद्य और पद्य दोनोंका मिश्रण होता है। अतः काव्य-शास्त्रकारोंने नाटकको चंपू कहा है। आजकल कअी अैसे नाटक भी लिखे गअे हैं, जिनमें कविताकी अेक भी पंक्ति नहीं होती।

नाटक वास्तवमें कोअी अेक स्वतंत्र कला नहीं है। वह तो कलाओंका अेक समूह है जिसके अन्तर्गत अभिनय, चित्रकला, वास्तुकला आदि कलाओंका समावेश होता है। नाटक बहुत अच्छा लिखा जानेपर भी यदि अुसमें काम करनेवाले पात्र अच्छे न हों तो नाटक कदापि सफल नहीं हो सकता। नाटक अच्छा लिखा हो और पात्र भी अुत्कृष्ट हों पर रंगमंच सुन्दर बना हुआ न हो अथवा अुपयोगमें आनेवाले परदे सुन्दर न हों तो भी नाटक सफल न होगा। अतः यह कहा जा सकता है कि नाटक कलाओंका अेक समूह है। अुपर्युक्त कलाओंके अतिरिक्त अिसमें संगीत, मूर्ति और काव्यकलाका भी समावेश होता है। अिसीको ध्यानमें रखकर भरतमुनिने ठीक ही कहा है— [४] '**न अैसा योग है न कर्म, न शास्त्र न शिल्प, अथवा अन्य कोअी अैसा कार्य जिसका नाटकमें अुपयोग न हो।**' सभी कलाओंसे युक्त होनेपर तथा सभी वर्गोंके लिअे समान रूपसे अुपयोगी होनेकी श्रेष्ठताके कारण ही तो [५] '**काव्यमें नाटकको रमणीय**' कहा गया है।

---

[४] न स योगो न तत्कर्म, नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।
सर्वशास्त्राणि, शिल्पानि, कर्माणि, विविधानि च॥

'काव्येषु नाटकं रम्यं'

जहाँ अुपन्यास, कहानी, कविता आदिमें पाठकको बहुत-सी बातें कल्पनाके आधारपर जाननी होती हैं वहाँ नाटकमें शब्द, पात्रोंकी वेशभूषा, अुनकी भावभंगी तथा अुनकी क्रियाओं अथवा कार्यों द्वारा बहुत-सी बातें स्पष्ट हो जाती हैं। अिसी नाते नाटकको जीवनके अधिक निकट समझा जाता है। नाटकोंके भारतीय प्राचीन आचार्य भरत-मुनि द्वारा नाटकके तीन प्रमुख तत्व माने गअे हैं-- १. वस्तु २. नायक और ३. रस। परन्तु पाश्चात्य समीक्षकोंने अिनकी संख्या बढ़ाकर छह तक पहुँचा दी है। आज नाटकके प्रमुख तत्व ये माने जाते हैं—

नाटकके तत्व

१. कथा-वस्तु २. पात्र ३. कथोपकथन ४. देश-काल ५. अुद्देश्य ६. शैली।

कथा-वस्तु — आदर्शोंकी भिन्नता होते हुअे भी अुपन्यास और नाटकोंके अवयव बहुत कुछ मिलते-जुलते होनेके कारण अुपन्यासकी ही तरह नाटकमें भी कथा-वस्तु अेक महत्वपूर्ण अंग है। अिसमें व्यर्थकी बातोंके लिअे गुंजाअिश नहीं है। नाटककार हर बातमें बहुतसे बंधनोंसे बँधा रहता है अिसलिअे वह कथा-वस्तुमें अुन्हीं बातोंका समावेश करता है कि जिनके बिना घटनाक्रममें शिथिलता आ जानेकी संभावना होती है। **नाटक केवल पढ़ लेनेकी वस्तु तो है नहीं; रंगमंचपर खेला जा सकना भी अुसका अेक आवश्यक गुण है।** अतः नाटककारको यह देखना चाहिअे कि जो दृश्य रंगमंचपर अभिनीत होनेवाले हैं वे वास्तवमें मार्मिक हैं या नहीं।

नित्य नअी बढ़ती हुअी सामाजिक समस्याओंके कारण आज कथा-वस्तुका क्षेत्र भी काफी व्यापक हो गया है। यही कारण है कि जहाँ प्राचीन-कालमें लोग करुण नाटकोंको देखना पसंद नहीं करते थे वहाँ यथार्थवादके आधारपर अब करुण नाटकों (ट्रैजडी) की भी सृष्टि जोरोंपर है।

जैसा कि अूपर कहा गया है कथा-वस्तुका क्षेत्र भी काफी व्यापक हो गया है। अतः नाटकोंमें भी अुपन्यास ही की तरह अेकसे अधिक कथा-वस्तुअें रह सकती हैं, जिसमें अेक प्रधान और अुसीको परिपुष्ट अेवं विकसित करने-

वाली अन्य गौण। अिन्हींको प्राचीन आचार्योंने क्रमशः **आधिकारिक** और **प्रासंगिक** कथा-वस्तु कहा है। **प्रासंगिक** कथावस्तुअें दो तरहकी होती हैं— पहली **पताका स्थान** और दूसरी **प्रकरी**। जब प्रासंगिक कथा आधिकारिक कथाके साथ अंततक संबंधित रहती है तो **पताका स्थान** कहाती हैं। और प्रासंगिक कथा थोड़ी दूरतक आधिकारिक कथावस्तुके साथ चलकर जब बीच ही में समाप्त हो जाअे तो **प्रकरी** कहलाती है। कथावस्तुके दो भेद और होते हैं जिन्हें **दृष्य** और **सूच्य** कहते हैं। **दृश्यके** अंतर्गत घटनाओंका अभिनय रंगमचपर दिखाया जाता है और जहाँ घटनाओंके तारतम्यको कायम रखनेके लिअे कुछ महत्वपूर्ण घटनाओंकी सूचना मात्र दी जाती है अुन्हें **सूच्य** कहते हैं।

कथावस्तुको अग्रसर करनेमें विभिन्न अवस्थाअें सहायक होती हैं। ये अवस्थाअें अिस प्रकार हैं— १. **प्रारंभ** २. **विकास** ३. **चरम-सीमा** ४. **अुतार** ५. **अंत या समाप्ति**।

१. **प्रारंभ** में कुछ संघर्षमयी घटनाका प्रारंभ होता है। यह संघर्ष भिन्न-भिन्न प्रकारोंसे अुत्पन्न होता है तथा अुपस्थित किया जाता है। कभी-कभी विभिन्न आदर्शों, अुद्देश्यों और दलोंको लेकर यह अुपस्थित किया जाता है तो कभी-कभी सिद्धांतोंकी विभिन्नताको लेकर सामान्यतः अिसमें नायक अेक पक्षका प्रतिनिधित्व करता है और प्रतिनायक दूसरे पक्षका। ये ही दो व्यक्ति अिन विरोधी भावनाओं और आदर्शोंके प्रतीकका काम करते हैं।

२. कथा-वस्तुकी दूसरी अवस्था **विकास** है। अिसमें अुत्पन्न परिस्थितियोंके परिणामस्वरूप पारस्परिक मनमुटाव अथवा भेदको और भी अधिक बढ़ानेमें सहायक होनेवाली घटनाओंके घटित होनेमें वृद्धि होती है। अिसके फलस्वरूप आपसी संघर्ष और अधिक बढ़ जाता है।

३. **चरम-सीमा** वह स्थिति है जहाँ पहुँचकर यह संघर्ष अपनी परा-काष्ठाको पहुँच जाता है। यहाँ पहुँचकर अिस बातका भी थोड़ा-थोड़ा आभास होने लगता है कि विजय अमुक दलकी होगी।

४. **अुतार** में विजयी पक्षकी विजय निश्चित हो जाती है। और

५. **अंत या समाप्तिमें** सारा संघर्ष समाप्त हो जाता है।

अुपर्युक्त अिन्हीं अवस्थाओंको प्राचीन भारतीय आचार्योंने क्रमशः **१. प्रारंभ २. प्रयत्न ३. प्राप्त्याशा ४. नियताप्ति** तथा **५. फलागम** कहा है। प्रारंभमें कथानकका प्रारंभ होता है। प्रयत्नमें फल-प्राप्तिकी अिच्छाकी पूर्तिके लिअे प्रयत्न किये जाते हैं। प्राप्त्याशामें अिस बातकी आशा होने लगती है कि अभीष्ट फलकी प्राप्ति हो जाअेगी। नियताप्तिमें अिस आशाका निश्चित रूप बँध जाता है और फलागममें फलकी प्राप्ति हो जाती है।

यद्यपि प्राचीन नाटकोंमें कथानकमें संघर्षमय वातावरणकी कमी नहीं थी तब भी अुसे प्राधान्य नहीं दिया गया था। किन्तु आजके नाटकोंमें यदि संघर्षमय वातावरणकी कमी हो तो अुसमें नाटकीयताका अभाव माना जाता है। संघर्षके अभावमें नाटकके पात्र जीवनरहित कठपुतलोंसे लगने लगते हैं। अिसका परिणाम यह होता है कि कथा-वस्तु शुष्क अेवं नीरस हो जाती है।

कथानकको मुख्य फल-प्राप्तिकी ओर ले जानेवाले चमत्कारपूर्ण अंशको **अर्थ-प्रकृति** कहते हैं। अर्थ-प्रकृतियाँ पाँच हैं **१. बीज २. बिन्दु ३. पताका ४. प्रकरी और ५. कार्य**। अिससे पहले हम पाँच अवस्थाओंकी भी चर्चा कर आअे हैं। अवस्थाओं और अर्थ-प्रकृतियोंमें मेल करानेका कार्य सन्धियों द्वारा होता है और ये भी पाँच हैं, जिन्हें **मुख-संधि, प्रतिमुख-संधि, गर्भ-संधि, अवमर्श** या **विमर्श-संधि** तथा **निर्वहण** या **अुपसंहार-संधि** के नामसे पुकारा जाता है।

आजके नाटकोंमें कथा-वस्तुसे संबंधित अिन प्राचीन नियमोंका पालन नहीं हो रहा है। अुनमें हमें सर्वथा नवीनता मिलती है। आजके नाटकोंमें प्रधान-कथाके साथ-साथ प्रासंगिक-कथाका रखना आवश्यक नहीं समझा जाता। प्राचीन कालमें नाटक प्रायः पाँच अंकके होते थे पर धीरे-धीरे वे तीन अंकोंके होने लगे। तीन अंकवाले अिन नाटकोंमें कथा-वस्तुकी विभिन्न अवस्थाओंका तो निर्वाह हो सकता है पर सारी संधियों और अर्थ-प्रकृतियोंका समावेश होना कठिन है।

यह तो हम देख ही चुके हैं कि कथा-वस्तुके **दृश्य** और **सूच्य** ये भेद होते हैं। **सूच्य कथावस्तु** के अंतर्गत अुसकी सूचना देनेके जो साधन हैं अुन्हें **अर्थोपक्षेपक** कहा जाता है। ये पाँच प्रकारके होते हैं——**१. विष्कंभक २. चूलिका ३. अंकास्य ४. अंकावतार ५. प्रवेशक।**

विष्कंभक में पहले ही अथवा बादमें घटित होनेवाली घटनाकी सूचना-मात्र दी जाती है। अिसमें केवल दो अप्रधान पात्रोंकी बातचीत चलती ही रहती है। यह या तो नाटकके आरंभमें अथवा दो अंकोंके बीचमें हो सकता है।

जहाँ कथाभागकी सूचना पर्देके पीछेसे दी जाती है अुसे **चूलिका** कहते हैं। **अंकास्य**में आगे आनेवाले अंककी कथाका सार बाहर जानेवाले पात्रों द्वारा दे दिया जाता है। जब पात्रोंके बदले बिना ही अंककी कथाको अन्य अंकोंमें आगे बढ़ाया जाता है तब **अंकावतार** होता है और **प्रवेशक**में आगे आनेवाली घटनाओंकी पूर्व-सूचना दी जाती है। अिस दृष्टिसे विष्कंभक और प्रवेशकमें यह अंतर है कि विष्कंभक नाटकके प्रारंभमें आता है और प्रवेशक दो अंकोंके बीचमें ही। प्रवेशकके पात्र निम्नस्तरके होते और प्राकृत बोलते हैं।

आधारको लेकर कथा-वस्तुके और तीन भेद किये गअे हैं **१. प्रख्यात २. अुत्पाद्य** और **३. मिश्र**। **प्रख्यात** कथा-वस्तु वह है जो अैतिहासिक पौराणिक

तथा परंपरागत जन-श्रुतिके आधारपर आधारित हो। **अुत्पाद्य** कल्पनाके आधारपर आधारित होती है और **मिश्र** में अितिहास तथा कल्पना दोनोंका सम्मिश्रण होता है।

आजके नाटकोंकी कथा-वस्तुका आधार पूरी तौरपर अिस शास्त्रीय विवेचनके अनुसार नहीं होता। आजके नाटकोंकी कथा-वस्तु विविध प्रकारकी होती है— **सामाजिक, राजनैतिक, पौराणिक, अैतिहासिक** और **समस्यामूलक**। कहनेका तात्पर्य यह कि कथा-वस्तुमें प्रतिपादित समस्याओंके आधारपर भी अुसका वर्गीकरण किया जाता है।

जैसा कि कहा जा चुका है कि कथा-वस्तुमें नाटककारको अनावश्यक और कम महत्वपूर्ण घटनाओंका समावेश नहीं करना चाहिअे वरन् माधुर्य तथा रसपूर्ण अुदात्त आवश्यक अेवं महत्वपूर्ण और प्रभाव अुत्पन्न करनेवाली घटनाओंका ही समावेश करना अुचित है।

संस्कृतके सभी और हिन्दीके भी प्रायः अनेक प्राचीन नाटकोंमें पहले **सूत्रधार** का प्रवेश होता था। संभवतः यह शब्द कठपुतलियोंके नाचसे लिया गया है, जिसमें सूत्रधारका काम धागेसे कठपुतलियोंको नचाना होता था। सूत्रधार मानों रंगशालाका स्वामी और व्यवस्था करनेवाला होता था। यह रंगशालामें आता, सबसे पहले प्रार्थनाके गीत गाता और तब किसी न किसी रूपमें दर्शकोंको नाटकका नाम बताता और विषय आदिका परिचय कराता था। प्राचीनकालमें यह परिचय बहुत बड़ा होता था। पर धीरे-धीरे नाट्य-कलाकी अुन्नतिके साथ ही साथ सूत्रधारका यह परिचय कम होता गया और अब तो यह सर्वथा समाप्त ही हो गया है।

सूत्रधार और स्थापक

पात्रोंके सहारे ही नाटककी कथा-वस्तु आगेको बढ़ती है। कथा-वस्तुको आदिसे अंततक निबाहनेके लिअे अेक **प्रधान पात्र** (नायक) होता

है तथा कभी **गौण पात्र** होते हैं, जो प्रधान पात्रके सहायक-स्वरूप होते हैं। नायककी प्रिया अथवा पत्नी **नायिका** कहलाती है। प्राचीन आचार्योंने नायकके लिअे आवश्यक गुणोंकी अेक तालिका दी है किन्तु आज जहाँ मनो-

पात्र

वैज्ञानिक नाटकोंकी सृष्टि जोरोंपर है और कथानक भी जीवनकी साधारण घटनाओंसे लिअे जाते हैं, वहाँ अिस तरहके बंधनोंकी आवश्यकता नहीं समझी जाती। प्रधान पात्रके गुणोंको और अधिक चमकानेके लिअे अैसे पात्रोंकी भी अवतारणा की जाती है, जिनकी अवतारणा करनेपर यह प्रधान पात्र अधिक अुठाव-दार लगे। रावणकी दुष्टतापूर्ण अवतारणा यदि न की जाती तो संभवतः रामचन्द्रजीकी अनिष्ट-संहारिणी अेवं मर्यादा स्थापित करनेवाली शक्तिके रूपका अितना सुन्दर अेवं सहानुभूतिपूर्ण अुत्पादन न हो सकता।

प्राचीन आचार्यों द्वारा गिनाअे गअे नायकके गुणोंकी आजके युगमें अधिक आवश्यकता नहीं मानी जाती। आजके नाटकोंका नायक तो जुआरी और शराबी भी होता है। नायिकाके लिअे भी यह आवश्यक नहीं माना जाता कि वह नायक की पत्नी अथवा प्रिया ही हो। स्त्री पात्रोंमें जो प्रमुख हो और कथा-वस्तुमें प्रमुख भाग ले, वही नायिका समझी जाती है।

प्रतिनायक, विदूषक, विट और **चेट** भी नाटकके मुख्य पात्र होते हैं। नायकका जो प्रमुख विरोधी हो वह **प्रतिनायक** कहलाता है। **विदूषक** हँसाने-वाला पात्र होता है। नायकसे अुसकी अत्यधिक घनिष्टता होनेके कारण वह अुससे भी परिहास कर सकता है, करता है। यह अुसका सलाहकार भी होता है। संस्कृत नाटकोंमें प्रायः पेटू-ब्राह्मण ही यह कार्य करते थे। आज-कल अिसकी पृथक् सत्ता नहीं रही। नायकके अनुचरको **चेट** कहते हैं। और **विट** वाद्य-गायनमें निपुण नायकका अंतरंग सेवक होता है।

यद्यपि अुपन्यासकी तरह नाटकोंमें चरिण-चित्रणके लिअे व्यापक क्येत्र नहीं होता तथापि अिसका यह अर्थ नहीं कि नाटकोंमें चरित्र-चित्रण कम महत्वकी वस्तु है। वास्तवमें अुत्कृष्ट चरित्र-चित्रण ही नाटककारकी रचनाको गौरवशाली बनाता है। अति सीमित क्षेत्र होनेके कारण नाटककारको अिसमें सफल होनेके लिअे बड़ी ही सतर्कतासे काम लेना होता है। अपने पात्रोंके क्रिया-कलापों और बातचीतको अिस ढंगसे रखना होता है कि दर्शक पात्र संबंधी सारी जानकारी प्राप्त कर ले। अिन्हींके द्वारा नाटककारके विचारोंकी भी जानकारी मिलती है। कहनेका तात्पर्य यह कि सफल चरित्र-चित्रणके साथ ही साथ नाटककारका अपना व्यक्तित्व भी अिन्हीं पात्रोंमें निहित होता है। नाटककी सफलता पात्रोंके चरित्र-चित्रणपर ही आधारित होती है। नाटकमें तीन प्रकारसे चरित्र-चित्रण किया जाता है— **१. कथोपकथन** द्वारा **२. स्वगतकथन** द्वारा तथा ३. पात्रोंके **कार्यकलाप** द्वारा।

चरित्र-चित्रण

१. **कथोपकथन** पात्रोंके बातचीतके ढँगसे अुनके चरित्रका अनुमान सहज ही में लगाया जा सकता है। वे जब अेक दूसरेके विषयमें बातचीत करते हैं तब अुनकी अिस बातचीतसे अुनकी चारित्रिक विशेषताओंका अपने-आप अुद्घाटन हो जाता है।

२. **स्वगतकथन** में अेकांतमें जब मनुष्य अपने आप सोचता है और अपने मनके विचारोंको अभिव्यक्त करता है तो स्वाभाविक ही अुसका चरित्र भी प्रकाशित होता है और मनके भीतरी संघर्षका चित्रण भी हो जाता है। अैसा करते समय पात्र मन ही मनमें कुछ कहता जाता है। यह कथन श्रोताओंको तो सुनाया जाता है पर पास ही में खड़े हुअे पात्रोंसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे अिसे न सुनें। यह बड़ा अस्वाभाविक-सा लगता है। अतः स्वगतकथनकी परंपरा भी अब धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही है।

३. **कार्यकलाप** पात्रोंकी चारित्रिक विशेषताओंके अुद्घाटनका अेक प्रमुख साधन है क्योंकि मनुष्यके कार्यों द्वारा ही अुसकी अुच्चता नीचताका अनुभव किया जा सकता है।

यह बताया जा चुका है कि नाटकमें पात्रोंके क्रिया-कलाप और बात-चीतका अेक विशेष स्थान है। यह बातचीत ही नाटकका **कथोपकथन** है।

कथोपकथन

भारतीय नाट्य-साहित्यका विकास भी वेद तथा अुपनिषदादिमें प्राप्त कथोपकथनसे ही माना गया है। कथोपकथन अथवा बातचीत द्वारा हमें पात्रोंके मनमें अुठनेवाले भावों और अुनके क्रिया-कलापोंके पीछे रहनेवाले विचार समझमें आते हैं। नाटककारके पास यही अेक साधन है जिससे पात्रोंके द्वारा वह अपने मनकी बातको व्यक्त करता है।

आचार्योंने कथोपकथनके तीन भेद किअे हैं—१. **नियत श्राव्य** २. **सर्व श्राव्य** और ३. **अश्राव्य**। रंग-मंचपर सब पात्रोंके सामने बात नहीं की जाती बल्कि कुछ निश्चित पात्रोंसे ही बातचीत की जाती है अुसे **नियत-श्राव्य** कहते हैं। **सर्व-श्राव्य** को प्रकट या प्रकाश भी कहते हैं। यह सभीके सुनने-लायक होता है। अश्राव्यको ही **आत्मगत या स्वगत** कहते हैं। यह किसी अन्यके सुननेके लिअे नहीं होता। जैसा कि अूपर कहा जा चुका है, स्वगत-कथन कुछ अस्वाभाविक-सा लगता है पर मनकी किसी विशेष बातके स्पष्टीकरणके लिअे अुसका अुपयोग किया जाता है। वास्तवमें यह पात्रके मनमें अुठनेवाले विचारोंके द्वंद्वोंका केवल स्पष्टीकरण मात्र है जिसे नाटककार अपनी सुविधा और श्रोताओंकी जानकारीके लिअे अुस पात्र द्वारा जोरसे बुलवाकर करा देता है। पाश्चात्य साहित्यमें स्वगतकथनको दूर करनेके लिअे अेक युक्ति निकाली गअी है। अिसके अनुसार अेक और नवीन पात्रकी अवतारणा की जाती है जो नायकका घनिष्ट मित्र होता है और जिसपर अपने मनके भाव प्रकट किअे जाते हैं। **आकाश-भाषित** भी अुसका अेक रूप ही है। 'मुद्रा-राक्षस' में मदारी कहता है—

(आकाशकी ओर देखकर) महाराज क्या कहा? तू कौन है? महाराज, मैं जीर्णविष नामक सँपेरा हूँ। (फिर आकाशकी ओर देखकर) 'क्या कहा

कि मैं भी साँप का मंत्र जानता हूँ ?' खेलूँगा ? तो आप क्या काम करते हैं, यह तो कहिअे ? (फिर आकाशकी ओर देखकर) 'क्या कहा, मैं राज-सेवक हूँ ? तो आप तो साँपके साथ खेलते ही हैं ।' अित्यादि ।

यों तो कथोपकथनमें कविताका अुपयोग अति प्राचीन है । पर धीरे-धीरे अिसका स्थान गौण बनता गया । संगीतको स्थान देनेकी दृष्टिसे कुछ गीत किसी या किन्हीं पात्र विशेषोंके द्वारा प्रस्तुत करनेकी परिपाटी पिछले दिनोंतक चलती रही है । आज भी अिस पद्धतिको कअी लेखक अपनाते हैं, परन्तु कविता या गीतोंका नाटकमें होना अब कदापि अनिवार्य नहीं माना जाता । अैसे भी सफल नाटक लिखे गअे हैं जिनमें कविताकी अेक पंक्ति भी नहीं होती । कविताको कुछ लोग वार्तालापका अंग बनाना अुचित नहीं मानते ।

देश-काल तथा वातावरण

अुपन्यासोंकी तरह ही नाटकोंमें भी देश-काल और वातावरणका ध्यान रखा जाता है । पात्रोंको ठीकसे समझने तथा अुनमें वास्तविकता लानेके लिअे जिस देश-काल परिस्थिति तथा वातावरणमें वह पात्र खड़ा है, अुसे भी समझ लेना अत्यंत आवश्यक है । ठीकसे समझनेके लिअे अिसका अुपयुक्त अेवं सही वर्णन किया जाना चाहिअे । यदि गुप्त-कालके समाजका, रामायण-कालीन अथवा महाभारत-कालीन समाजका चित्रण करते समय आधुनिक-कालीन बातोंका समावेश कर दें तो वह अनुपयुक्त अेवं असंगत ही नहीं, हास्यास्पद भी होगा । पात्रोंके बोलनेका ढंग, अुनकी वेश-भूषा, संस्कृति सभ्यता व रीतिरिवाज सब अुस समयके अनुरूप ही होने चाहिअे कि जिस कालका वह पात्र हो । राम या कृष्णको हैट, नेकटाअी पहने अथवा किसी यूरोपीय राजा तथा पात्रको धोती, कुर्ता पहने हुअे चित्रित करनेपर क्या सचमुच ही अस्वाभाविक न लगेगा ?

नाटकमें देश-कालकी समस्यापर विचार करते हुअे **संकलनत्रय** पर भी हमें विचार करना चाहिअे। प्राचीन ग्रीक नाटकोंमें स्थल, कार्य-कालकी अेकताका बहुत अधिक ध्यान दिया जाता था। अुन आचार्यों का यह मत था कि नाटकमें जिस घटनाका वर्णन किया गया हो, अुसका संबंध किसी अेक ही कार्यसे हो, वह अेक ही स्थानकी हो और अेक ही दिनमें घटी हो। अेक दिनमें, अेक स्थानपर जो कार्य हुअे हों अुन्हींका अभिनय अेक बारमें होना चाहिअे। अैसा न हो कि अेक दृश्य दिल्लीका हो तो दूसरा पटनाका। नाटकमें वर्णित घटना अेक ही स्थानकी हो और अिसे ही **स्थलकी अेकता** कहते हैं।

नाटकमें जिन घटनाओंका वर्णन हो अुनमें वर्षोंका अन्तर न हो। अुनके होनेमें अुतना ही समय लगा हो जितना कि नाटकके अभिनयमें लगे। अिसे ही **समयकी अेकता** कहते हैं।

कथावस्तुमें रसका अेक समान स्रोत बहता रहे तो कहा जा सकता है कि नाटकमें **कार्यकी अेकता** है। अैसी अवस्थामें कथावस्तुमें प्रासंगिक अथवा गौण कथाओंको स्थान नहीं मिल सकता।

काल-संकलन वाले नियमको भवभूतिके 'अुत्तर राम चरित' नाटकमें बिलकुल ही नहीं पाला गया है फिर भी वह अेक अत्युत्तम नाटक बन पड़ा है। वास्तवमें 'काल संकलन' संबंधी नियम वहींतक सहायक हो सकते हैं जहाँतक कि वे नाटककी स्वाभाविकतामें सहयोगी हों।

भाषा अपने विचारोंको प्रकट करनेका अेक महत्वपूर्ण साधन है। अतः भाषाका प्रयोग अैसे ही ढंगसे होना चाहिअे, जिससे वह पात्रोंके द्वारा प्रदर्शित किअे जानेवाले भावोंको सफलतासे दर्शकोंको समझा सके। चूँकि नाटकमें विभिन्न श्रेणीके कअी पात्रोंका प्रयोग होता है। अतः जिस श्रेणी और योग्यताका पात्र हो और जिस परिस्थितिमें हो अुसीके अनुसार पात्रकी भाषा होगी। **'भाषा भी पात्रोंके अनुकूल होनी चाहिअे'** अिस बातकी यथार्थताको ठीकसे न

पात्रोंकी भाषा

समझनेके कारण अेक अनावश्यक-सा विवाद खड़ा हो गया था, जिससे कभी-कभी किसी नाटकको भाषाका अजायबघरतक समझनेकी बारी आ गअी थी। किन्तु अब अेक ही भाषाके अंतर्गत पात्रोंकी श्रेणी तथा परिस्थितिके अनुकूल भाषाका अुपयोग अधिक वांछनीय अेवं अुचित समझा जाता है। यदि पात्र ग्रामीण होगा तो अवश्य ही अुसकी भाषामें तथा किसी पंडितकी भाषामें अंतर होगा। ग्रामीण शब्दों तथा रात-दिनके प्रचलित मुहावरोंका ग्रामीण पात्रकी भाषामें अधिक प्रमाणमें अुपयोग होगा।

अंक-विभाजन

नाटककी असली कथा-वस्तुका आरंभ अुसमें प्रदर्शित किसी विरोधसे होता है। यह विरोध भिन्न-भिन्न प्रकारके नाटकोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारसे प्रदर्शित किया जाता है। सामाजिक नाटकोंमें यह सामाजिक बंधनोंसे अुत्पन्न परिस्थितियोंसे आरम्भ होता है, मनोवैज्ञानिक नाटकोंमें हृदयमें अुठनेवाले अंतर्द्वन्द्वके परिणामस्वरूप; तो अैतिहासिक नाटकोंमें किन्हीं बड़े-बड़े राज्योंके मनमुटावके कारण। यह विरोध जितनी तीव्रताके साथ प्रदर्शित किया जाअेगा, नाटककी घटनाओंकी गति अुतनी ही जोरदार होगी। यह विरोध किसी स्थानसे आरम्भ होकर विकास पाता है, और चरमबिंदुतक पहुँचनेपर अुसका अंत होता है। विरोधका यही आरम्भ, विकास और अंत कथा-वस्तुका भी आरंभ, विकास, और अंत होता है।

संभवतः नाटककी पाँच अवस्थाओंके निर्वाहके लिअे ही प्राचीन आचार्योंने पाँचसे लेकर दस अंकोंतकका नियम बनाया था। परन्तु आजकल अितने बड़े नाटकोंको देखना कोअी दर्शक पसंद नहीं करता। सिनेमाकी कलाका नाटकके आकारपर बड़ा प्रभाव पड़ा। नाटकका आकार अुतना ही बड़ा पसंद किया जाता है कि जिसके अभिनयमें दो या ढाअी घण्टेसे अधिक समय न लगे। अिसीलिअे अंकोंका भी तीनसे अधिक न होना अुत्तम माना

जाता है। नाटककारको यह भी ध्यान रखना चाहिअे कि वह नाटककी पाँचों अवस्थाओंमें सामंजस्य रखे और यथासंभव प्रत्येक अवस्थाके बीच समान समय लगाअे।

यद्यपि कुछ लोग नाटकमें रंगमंचको विशेष महत्व नहीं देते तथापि रंगमंचकी सुविधा और असुविधाके अनसार नाटकोंमें परिवर्तन होता आया है। आजकल रंगमंचको यथार्थ और वास्तविक बनानेकी प्रवृत्ति बढ़ रही है। अिसके लिअे प्राचीन कालमें रंगमंच या तो बाँस या सरकंडेके बनाअे जाते थे जिनपर कपड़ा वगैरह लपेटकर पहाड़ आदिके दृश्य अंकित किअे जाते थे या फिर अभिनेता अिस प्रकारकी चेष्टाओंका प्रदर्शन करता था कि जिससे अिस प्रकारकी भावनाओंका देखनेवालोंको बोध हो जाता था। अिस प्रकार रंगमंचकी सजावट, पात्रोंकी वेशभूपा, अुनकी बातचीतका ढंग तथा अुनका भावात्मक प्रदर्शन भी अभिनय ही है। तात्पर्य यह कि अभिनय वह क्रिया है जो दर्शकके हृदयमें किसी भावको अुत्पन्न करे। किन्तु यह ध्यान रहे कि सजावट, वेशभूषा और बातचीत ये सब रसोत्पत्तिमें सहायक हैं, प्रधान नहीं। जहाँ रसानुभूति गौण हो जाअेगी वहाँ वह नाटक-लेखकका अेक दोष ही समझा जाअेगा।

रंगमंच और रस

हमारे यहाँ यह विवाद बहुत दिनोंसे चला आ रहा है कि वास्तवमें रसकी निष्पत्ति नाटकके पात्रोंमें होती है या दर्शकोंमें। अभिनवगुप्तके मतके अनुसार रस नाटकके दर्शकोंमें वर्तमान रहता है। नाटकके पात्रों, अुनकी वेशभूषा तथा अुनके क्रिया-कलापोंको देखकर अुनके मनमें सोये हुअे वासनाओंके संस्कार जागृत हो जाते हैं और अुन्हें नाटकके पात्र-विशेषके सा तन्मय बना देते हैं। अुनकी अिस तन्मयता, कविके साथ अिस

आत्मीयताको, ही साधारणी-करण कहते हैं और यही रस-दशा भी है। तात्पर्य यह कि रसकी स्थिति दर्शकमें ही होती है।

यह तो निश्चित ही है कि नाटककी प्रत्येक क्रियाका अपना अेक अुद्देश्य है। नाटककारको अिस बातका ध्यान रखना चाहिअे कि अकारण ही कोअी क्रिया न दिखाअी जाअे। प्रत्येक क्रियाके अिसी अुद्देश्यसे रसकी अुत्पत्तिमें सहायता मिलती है।

वैसे देखा जाअे तो नाटक रूपकका ही अेक भेद है। किन्तु यह शब्द अब अितना प्रचलित हो गया है कि रूपकके लगभग सभी भेदोंके लिअे अिसी नामका प्रयोग किया जाता है। रूपकके दस भेद हैं — **१. नाटक २. प्रकरण ३. भाण ४. व्यायोग ५. वीथी ६. समवकार ७. प्रहसन ८. डिम ९. अीहामृग** और **१०. अंक**। विषय-भेदके अनुसार नाटक कअी प्रकारके हो सकते हैं। जिनमें **अैतिहासिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, प्रहसन** और **अेकांकी** मुख्य हैं।

नाटकके प्रकार

अैतिहासिक नाटकोंका प्रधान अुद्देश्य किसी अतीतकी झलक दिखाना होता है और अैसा करते समय कल्पनाका भी अुपयोग किया जाता है। अैसे नाटकोंमें कल्पनाके आधारपर कहीं-कहीं परिस्थितियोंकी भी रचना अिस-लिअे कर ली जाती है कि जिनसे छूटे हुअे अंशोंकी कड़ी मिलाअी जा सके अथवा किसी चरित्रकी कोअी खास बात प्रकाशमें लाअी जा सके।

धार्मिक नाटकोंमें किसी धार्मिक कथा-विशेषको लेकर तत्कालीन धार्मिक परिस्थितियों तथा पात्रगत विशेषताओंका अुल्लेख किया जाता है। धार्मिक प्रचार अेवं प्रसारके लिअे अिन नाटकोंकी विशेष अुपयोगिता होती है।

सामाजिक नाटकोंमें सामाजिक रूढ़ियोंके प्रति विद्रोह किया जाता है, और अुनसे अुत्पन्न समस्याओंको अुपस्थित कर, अुनके दुष्परिणामोंका भी दिग्दर्शन कराया जाता है।

राजनीतिक नाटकोंकी रचनाअें किसी राजनैतिक समस्याको सुलझानेकी दृष्टिसे समय-समयपर होती रहती हैं। अुनमें काल-विशेषकी राजनैतिक विषम परिस्थितियोंका दिग्दर्शन कराया जाता है।

प्रहसन हास्यरस प्रधान नाटक होता है जिसका मुख्य अुद्देश्य हास्यको मूलरस स्थिर रखते हुअे किसी विशेष ध्येयका प्रतिपादन होता है। प्राचीनकालमें यह नाटकका ही अेक अंग माना जाता था। पर आजकल तो अिसने अेक स्वतंत्र रूप धारण कर लिया है। प्रहसनमें अेक ही अंक होता है।

अिधर थोड़े समयसे **अेकांकी** नाटकोंका भी प्रचलन बढ़ता जा रहा है। अेकांकी नाटक जीवनके अेक अंगकी परंपरासे चले आये हुअे सुख-दुख-विषादकी अेक झाँकी है। ये गद्य-प्रधान होते हैं, और मनोविश्लेषण तथा समस्याओंकी ओर संकेत करना अिनका प्रधान अुद्देश्य होता है। कहानी ही की तरह अुनका रूप और आकार छोटा होता है। अुनका अुद्देश्य जीवन और सदियोंके अितिहासकी विवेचना नहीं, अपितु केवल कुछ घंटों और मिनटोंमें अुठनेवाली हृदयकी प्रवृत्तिकी झाँकी दिखा देना होता है। बड़े नाटकोंकी तरह विशद विवेचनकी अुसमें गुंजाअिश नहीं। किसी विज्ञ लेखकने ठीकही लिखा है कि '**यदि बड़े नाटकको अेक विस्तृत अुद्यान कहा जाअे तो अेकांकी नाटकको अेक गुलदस्ता कहा जाअेगा।**' कहानीहीकी तरह अेक घटना, अेक परिस्थिति और अेक अुद्देश्यको लेकरही अेकांकीकी रचना होती है।

अेकांकी नाटकोंमें पात्रोंकी संख्या बहुत कम होती है। अुनकी संख्या चार या पाँचसे अधिक नहीं होती। सभी पात्रोंका नाटककी घटनासे पूरा संबंध होता है। केवल मनोरंजनके लिअे पात्रोंकी संख्याको बढ़ाना अुचित नहीं होता।

कथोपकथनमें भी पात्र अुपदेशका स्वाँग न भरने लगें। छोटे अेकांकी-नाटकोंमें व्याख्यान, अुपदेश और लम्बी वाक्यावलीके लिअे कोअी स्थान नहीं। कथोपकथन सरल और स्पष्ट होना चाहिअे। कथोपकथन अैसा हो जो पात्रोंके भावोंको स्पष्ट रूपसे प्रकट कर सके।

अूपर दिये हुअे विवेचनसे हम यह पाते हैं कि 'अेकांकी नाटककी प्रणयन-कला नाटककारसे पूर्ण-नाटककी तुलनामें कहीं अधिक कलाकी माँग कर रही है।

नाट्य-कलाने यहीं विश्राम नहीं लिया। अच्छे-अच्छे अुपन्यासोंके नाटकीय रूप (सिनेरियो) प्रकाशित हुअे हैं। रेडियोका भी नाटककी कायापर असर पड़ा। रेडियोके सहारे लोग अपने कमरोंमें बैठे रहकर भी नाटकका आनंद लेते हैं। रेडियोपर ध्वनित किये जानेवाले अैसे नाटकोंको **'ध्वनिरूपक'** कहते हैं। अिसका अपना स्वतंत्र टेकनीक है। रंगमंचकी पूर्ति अिसमें ध्वनिके द्वारा होती है।

गीति-नाट्योंमें [पूरा संवाद अथवा कथोपकथन कवितामें ही होता है। वैसे देखा जाअे तो गद्यके प्रचारसे पहले नाटक भी कविताओंमें ही लिखे जाते थे। अुसी परंपराको आज भी कुछ लेखक निभाते जा रहे हैं। हरीकृष्ण 'प्रेमी' का 'स्वर्ण विहान' अैसा ही अेक गीति-नाट्य है। आजकल रेडिओसे काफी गीति-नाट्य प्रसारित किअे जाते हैं।

अिसी तरह नाटकके अेक और भेद **स्योक्तिपरक'** (मोनोलॉग) का भी चलन बढ़ रहा है।

गद्य-गीत

'गद्य-गीत' शब्द ही अिस बातको बताता है कि यह गद्य और पद्यके बीचकी कोअी चीज है। न तो शुद्ध गद्य ही और न शुद्ध पद्य ही। किसीने ठीक कहा है कि 'गद्य जो अपनी सीमामें नहीं रहा पद्यकी ओर बढ़ गया, गीत जो अपनी परिधि नहीं छू सका, गद्यकी ओर लौट आया; दोनों मिलकर गद्य-गीत बन गया।' गद्य-गीतके संबंधमें मुंशी प्रेमचन्द अेक स्थानपर कहते हैं 'हमारा खयाल है. . .कि गद्यगीत स्वतन्त्र वस्तु है और कवि जो कुछ पद्यमें नहीं कह पाता, वह गद्य-गीतोंमें कहता है। कविता भावना-प्रधान रचना है, और गद्य-गीत अनुभूति-प्रधान।' कहनेका तात्पर्य यह कि गद्य-गीतके स्वरूपके बननेमें गद्यने पद्यसे कुछ स्‍वीकार किया और पद्यने गद्यको कुछ दिया, और अिस तरह ग्रहण-प्रदानकी प्रक्रियाने हिन्दीमें अेक नवीन शैलीको जन्म दिया।

परिभाषा

अिस ग्रहण-प्रदानमें जो कुछ लिया-दिया गया, अुसका भी हम विचार कर लें। कवितामें भिन्न-भिन्न छंदोंका प्रयोग किया जाता है। गद्य-गीतमें छंदका कोअी बन्धन नहीं; हाँ, अुसमें काव्यकी भावुकता और रस-संचारिणी शक्ति अवश्य होती है। अिससे यह सिद्ध हुआ कि गद्य-गीतमें गद्यकी प्रधानता होती है जिसके परिणाम स्वरूप अुसकी गणना गद्य-साहित्यके अन्तर्गत ही की जाती है। अुसे जो गीत कहा जाता है अुसका कारण यह

है कि अुसमें गीतकी कुछ विशेषताओंका समावेश हो जाता है। गीतकी भाँति ही गद्य-गीत आकारमें लघु होता है। गीतकी तरह ही अुसमें अेक भाव, अेक वृत्ति, अेक वातावरण, अेक विचारका निर्वाह आदिसे अन्ततक होता है। गद्य-गीत यद्यपि छंदके नियमोंसे बँधा हुआ नहीं होता, फिर भी अुसमें वाक्यांशों या वाक्योंकी आवृत्ति अिस प्रकार होती है कि अुसमें छंदका ही आनन्द आता है।

हिन्दीमें गद्य-गीतके लेखक अभी अँगुलियोंपर गिनने योग्य हैं। पर वह समय दूर नहीं जब अिस अंगकी पूर्ति भी अधिक मनोयोग और अुत्साहसे होगी।

गद्य लिखते समय लेखकके भावोंका आवेश जब तीव्रतम हो जाता है तब अुसके द्वारा लिखी गयी पंक्तियाँ स्वतः चमकने लगती हैं। अिसके पीछे अेक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक रहस्य है और वह यह कि लेखक प्रत्येक क्षण विचार-प्रधान नहीं रहता, विश्लेषण करना, अथवा सिद्धांतकी स्थापना करना ही चाहे अुसका अुद्देश्य रहता हो पर आखिर अुसके भी हृदय तो होता ही है और अिस कारण अुसकी पंक्तियोंपर भी भावुकताका रंग चढ़ जाना स्वाभाविक ही है। धार्मिक ग्रंथोंमें यह बात विशेष रूपसे परिलक्षित होती है। अुदाहरणके रूपमें हम यह कह सकते हैं कि यदि बाअिबिल धर्म-ग्रंथ न होता तो गद्य-काव्यका अुदाहरण प्रस्तुत कर सकता था। फिर भी, निस्सन्देह यह कहा जा सकता है कि गद्य-गीतकी अपनी अेक स्वतन्त्र कला है।

गद्य-गीतमें कल्पना, भावुकता और रसात्मकता रहनेपर भी अुसे कविताके अन्तर्गत नहीं सम्मिलित किया जा सकता। हमने यह देखा है कि

प्रमुख तत्व

कवितामें छंदोमय लयका होना आवश्यक है और यह छंदोमय लय गद्य-गीतमें नहीं होती। किन्तु अेक बात तो है ही कि गद्य-प्रधान होने पर भी हम अुसे गीत तो कहते ही हैं और अुसका कारण यह है कि अुसमें गीतकी निम्नलिखित विशेषताअें प्रधानतासे पायी जाती हैं—

१. गीत साधारणतया बड़ा नहीं होता है। लघुत्व अुसका अेक आवश्यक गुण है। गीतकी यह विशेषता गद्य-गीतमें भी पायी जाती है।

२. गीत ही की तरह गद्य-गीतमें भी अेक ही भाव, अेक ही अनुभूति, अेक ही वातावरण और अेक ही वृत्ति तथा विचारका आदिसे अंत तक निर्वाह होता है।

३. गीतकी ही भाँति गद्य-गीत भी रसमय होता है। अुसमें भी अनुभूतिकी तीव्रता और निरंतरता विद्यमान रहती है।

४. गद्य-गीतकी रचनामें भी विशिष्ट क्षमताकी आवश्यकता होती है।

५. गीतकी रचना छंदमें होती है किन्तु गद्य-गीतमें छंदका बंधन नहीं होता। पर अुसमें वाक्यों और वाक्यांशोंकी आवृत्ति अिस तरह होती है कि अुसमें अेक विशेष प्रकारकी लय पैदा हो जाती है।

निबन्ध

हिन्दीका आजका युग गद्यका ही युग कहा जाता है। गद्यने नाटक, अुपन्यास, कहानी आदि साहित्यके ललित अंगमें ही अपनेको अधिक विकसित किया, किन्तु गद्य-काव्यका सच्चा रूप तो हमें निबन्धमें ही देखनेको मिल सकता है। निबन्ध ही अेक अैसा माध्यम है जो गद्यको अुसके सच्चे रूपमें हमारे सामने प्रस्तुत कर सकता है। आचार्य शुक्लने अिस संबंधमें यथार्थ ही कहा है कि '**यदि गद्य कवियोंकी कसौटी है तो निबन्ध गद्यकी कसौटी है।**'

अिसमें संदेह नहीं कि हिन्दीने संस्कृत साहित्यसे बहुत कुछ लिया है और वैसे देखा जाअे तो अुसका विकास अेक प्रकारसे अुसीके आधारपर हुआ है। पर निबन्धके क्षेत्रमें हिन्दीको संस्कृत साहित्यसे विशेष कुछ नहीं मिला। अिसका कारण यह है कि वर्तमानकालमें जिस अर्थमें हम निबन्ध शब्दका प्रयोग करते हैं अुस अर्थमें संस्कृत साहित्य स्वयं निबन्धोंसे शून्य है। अुसमें कथा, कहानी, नाटक, आलोचना तथा अिसी प्रकारके साहित्यके अन्य अंग तो हैं, पर निबन्ध नहीं है।

हिन्दी साहित्यमें निबन्धका विकास अंगरेजी साहित्यके आधारपर हुआ। हमारे यहाँ सदा ही गद्यके क्षेत्रमें वैज्ञानिक विश्लेषण और दार्शनिक-

चिंतनकी प्रधानता रही है। प्राचीन निबन्धोंमें शुष्क तार्किक चिंतन और वैज्ञानिक विवेचनकी प्रधानता है। अुनमें रसात्मकता नहीं है, और न अुनमें लेखकका व्यक्तित्व ही प्रतिफलित हुआ है।

प्राचीन कालमें छापनेकी कलाको लोग नहीं जानते थे। अुस समय भोज-पत्रोंपर या ताड़के पत्तोंपर लिखा करते थे। अिसके बाद अुन्हें अिकट्ठा करते, सँवारते और अिकट्ठा सीकर पुस्तकके रूपमें बनाते थे। अिस बाँधनेकी क्रियाको ही निबन्ध या प्रबन्ध कहा जाता था। धीरे-धीरे अिस शब्दके अर्थमें परिवर्तन होता गया और निबन्ध शब्दका अर्थ हो गया— '**अेक अैसा लेख, जिसमें अनेक विचारों, मतों या व्याख्याओंका सम्मिश्रण या ग्रथन हो।**'

अर्थ और परिभाषा

नागरी-प्रचारिणी-सभाने अपने हिन्दी शब्द-सागरमें अिस शब्दका अर्थ देते हुअे लिखा है, "**बन्धन वह व्याख्या है, जिसमें अनेक मतोंका संग्रह हो।**" अिस तरह निबन्धसे तात्पर्य **अैसे लेखोंसे हैं जिनमें विचार परंपराके साथ-साथ लेखक अपने विचारों और मनोवृत्तियोंको अपनी भाषा और अपनी शैलीमें व्यक्त करता है।**

प्रबन्ध शब्दका अर्थ निबन्ध शब्दके अर्थसे अधिक व्यापक है। प्रबन्ध शब्दका अर्थ है— **कअी वस्तुओं या बातोंका अेकमें ग्रथन, अेक दूसरेसे सम्बद्ध वाक्य-रचनाका विस्तार, लेख या अनेक सम्बद्ध पद्योंमें पूरा होनेवाला काव्य।** पुराने जमानेमें यह शब्द अपने मौलिक अर्थमें अुन समस्त लेखों या रचनाओंके लिअे प्रयोगमें आता था जो किसी विषय अथवा कथाको शास्त्रीय ढंगसे गद्य अथवा पद्यमें प्रस्तुत करते थे। अिस अर्थमें भी अंगरेजी साहित्यके प्रभावके कारण परिवर्तन हो गया और अब अैसी रचनाअें प्रबन्ध कही जाती हैं जिनमें "**लेखक प्रतिपाद्य विषयको लेकर अुसके स्वरूप, अुपयोग, महत्व आदिको दिखाता हुआ अुसकी अुत्पत्ति तथा विवेचनके साथ अपनी भाषा और अपनी शैलीमें अपने विचारोंका स्पष्टीकरण करता है।**"

हिन्दीमें आलोचनात्मक तथा गवेषणा (खोज) पूर्ण रचनाअें प्रबन्ध ही समझी जानी चाहिअें। परंतु अिधर अिन्हें भी निबन्ध कहा जाने लगा है।

लेखका अर्थ तो निबन्ध और प्रबन्धसे भी अधिक व्यापक है। लेखका अर्थ है—लिखी हुअी सामग्री। अिस शब्दसे किसी विशेष विषयकी अथवा ढंगकी रचनाका ज्ञान नहीं होता। अंग्रेजीका आर्टिकल (Article) शब्द लेखका अर्थ देने लगा है।

अभिव्यक्तिका अेक प्रकार

अूपर दिये हुअे विवेचनसे हम यह समझ सकते हैं कि— निबन्ध अेक तरहका स्वगत-भाषण ही है क्योंकि अिसके द्वारा लेखक अपने मनकी बात ही तो कहता है चाहे वह अुसकी वैयक्तिक अनुभूति हो, भावना हो या कोअी अेक आदर्श हो। निबन्धमें लेखकका निजी रूप अधिक प्रत्यक्ष और स्पष्ट रहता है। अंग्रेजीके अेसे (Essay) के यही लक्षण माने जाते हैं। निबन्धका आकार छोटा होता है। अुसमें जीवन या समाजके किसी अेक पक्षकी अभिव्यक्ति या विवेचना रहती है। निवंध-लेखक अपने दृष्टि-कोणके अनुसार विश्वके विविध रूपोंमेंसे किसी अेककी विवेचना करता है। प्रयेत्क लेखमें अुसके लेखकका व्यक्तित्त्व झलकता रहता है। लेखमें अपने मत अथवा दृष्टिकोणको प्रतिपादित करते समय अुसकी निजी सम्मति और दृष्टिकोणकी ही प्रधानता रहती है। कहनेका तात्पर्य यह कि निबन्धकारको अपनी व्यक्तिगत प्रतिभाके प्रकाशनका विशेष अवसर रहता है। अपनी व्यक्तिगत प्रतिभाके सहारे ही वह साहित्यके अिस अंशको अितना चमत्कार-पूर्ण और अुत्कृष्ट बना देता है।

निबन्ध, आख्यायिका और प्रगीत-काव्यमें काफी समानता है। आख्या-यिकाका सृजन किसी अेक विशिष्ट अुद्देश्यके प्रतिपादनके लिअे होता है। अुस अुद्देश्यको प्रतिपादित कर देनेके बाद वह समाप्त हो जाती है। अुसी

तरह निबन्ध भी किसी अेक विशिष्ट अुद्देश्यकी पूर्तिके लिअे लिखा जाता है और अुसी अुद्देश्यकी पूर्तिके बाद वह समाप्त हो जाता है।

जिस तरह अुपन्यासके किसी अेक अध्यायको हम कहानी नहीं कह सकते अुसी तरह दर्शनिक या साहित्यिक ग्रंथके किसी अेक अध्याय या अंशको हम निबन्ध नहीं कह सकते। अुसका तो कहानीकी ही भाँति अपना अेक स्वतंत्र अस्तित्व है।

अुपर्युक्त विवेचनके आधारपर कुछ लोग निबन्धकी परिभाषा अिस प्रकार भी करते हैं—**'निबन्ध गद्य-काव्यकी वह विधा (प्रकार) है जिसमें कि लेखक अेक सीमित आकारमें अिस विविध रूप जगतके प्रति अपनी भावात्मक तथा विचारात्मक प्रतिक्रियाओंको प्रकट करता है।'**

यह तो सभी जानते हैं कि सभ्यताके विकासके साथ-साथ मनुष्यकी समस्याअें भी बढ़ती जा रही हैं और समयका अभाव सभीको महसूस होने लगा है। परिणामतः मनुष्यमें कमसे कम समयमें अधिकसे अधिक जाननेकी प्रवृत्ति जोर पकड़ती गयी। अिस दिशाकी अुसकी चेष्टाओंमें निरंतर अुन्नति होती गयी। निबंध भी अेक अैसा ही साधन है। निबंधके सहारे पाठक संक्षेपमें किसी विषयका ज्ञान प्राप्त करता है। अिस दृष्टिकोणको हम पाठकका दृष्टिकोण कहेंगे वहाँ लेखककी ओरसे यह कहा जा सकता है कि वह कमसे कममें विचारोंको अिस ढंगसे पाठकके सामने रख देना चाहता है कि जिससे पाठक अुसके दृष्टिकोणको समझ जाअे और अुससे प्रभावित भी हो जाअे। अपनेसे दूसरोंको प्रभावित करनेकी शक्ति अुत्पन्न करनेमें आरंभसे ही काफी अभ्यासकी आवश्यकता होती है। निबन्धके जरिअे लेखककी विचार-शक्ति और लेखनकलाकी अुन्नति होती है। वह अपने लेखों द्वारा पाठकमें किसी विषयके प्रति रुचि अुत्पन्न करता है।

अुद्देश्य

अपनी योग्यताके प्रदर्शनकी अपेक्षा भावोंका प्रदर्शन ही लेखकके निबन्धोंका मुख्य अुद्देश्य होना चाहिअे। मनुष्य जो कुछ देखता, सुनता और अनुभव करता है अुससे अुसके ज्ञानकी वृद्धि तो होती है पर अुस अनुभूति अथवा ज्ञानको लिपिबद्ध कर देनेपर आनेवाली संतति अुस ज्ञानके संचित कोषसे लाभ अुठा सकती हैं। दिनभरमें हम तरह-तरहकी मौखिक बातें करते हैं, समय अेवं आवश्यकताके अनुसार अपनी कही हुअी अेक ही बातको बदलते रहते हैं। कहनेका तात्पर्य यह कि मौखिक बातमें स्थिरताका जो गुण नहीं होता वह लिखित रूपमें हो जानेपर अुसमें आ जाता है और फिर वह आनेवाली पीढ़ियोंके लिअे सदियोंतक मार्गदर्शकका काम करता है। अतः निबन्धका महत्व अवर्णनीय है।

निबंधका महत्व

संक्षेपमें यदि हम निबन्धके गुणोंका वर्णन करना चाहें तो कह सकते हैं कि '**निबन्ध हमें लिखना सिखाता है, हमारी मानसिक शक्तियोंका विकास करता है, हमारी विचारधाराको शुद्ध अेवं संयमित करता है और अुसे स्थायी बनानेमें सहायक होता है।**'

बार-बार लिखते रहनेका अभ्यास करनेपर विचार और भाव सरल अेवं सुन्दर रूपमें प्रकाशित किअे जा सकते हैं; अुनकी धूमिलता हट जाती है, अुनमें अेक स्पष्टता आजाती है। तात्पर्य यह कि निबन्ध, लेखकको अमरत्व प्रदान करते हैं। और अिस माध्यमके जरिअे विद्वानोंकी विद्वत्ता साधारण जनता तक पहुँचती है जिससे वे अुस विद्वत्तासे लाभ अुठा सकते हैं। यही नहीं, निबंधोंके जरिअे लोक-रुचिका भी परिष्कार होता है तथा समाजका स्तर अूँचा अुठता है।

हमने यह देखा है कि सीमित समयमें सीमित शब्दों द्वारा किसी व्यक्ति, वस्तु अथवा घटना सम्बधी विचारोंको लिपिबद्ध कर देनेका नाम ही निबन्ध है। अतः निबन्धके विषयोंकी सीमा निश्चित करना कठिन है।

निबन्धका विषय कुछ भी हो सकता है। आकाशके तारोंसे लेकर धूलके कणोंतक निबन्धके अंसंख्य विषय हो सकते हैं। सरल विषयोंपर सबसे पहले निबन्ध लिखे जा सकते हैं। अिसीको दूसरे शब्दोंमें यों भी कह सकते हैं कि जिन विषयोंको हम प्रति दिन देखते हैं या जो हमारे अत्यंत निकटके हैं अुन विषयोंपर लिखनेका हम पहले प्रयास करें और ज्यों-ज्यों लिखनेका हमारा अभ्यास बढ़ता जाअे त्यों-त्यों हम अैसे विषयोंपर भी लिख सकते हैं कि जिनपर लिखनेके लिअे विशेष मनन अेवं चिन्तनकी आवश्यकता होती है। दया, लज्जा, सौंदर्य, साहस, प्रेम आदि अैसे ही विषय हैं।

निबन्धके विषय

शीर्षक शब्द संस्कृतके 'शीर्ष'से बना है; जिसका अर्थ है अग्रभाग, चोटी, सिरा, मस्तक। निबन्धके सम्बन्धमें अिस शब्दका अर्थ होगा 'किसी विषयका वह परिचायक संक्षिप्त शब्द या पद जो बहुधा पुस्तक, समाचारपत्र, विज्ञापन, लेखादिके अूपर लिखा रहता है।' शीर्षकमें निबन्धका पूरा भाव छिपा रहता है। शीर्षकके पढ़ते ही निबन्धके विषयका तुरन्त ही पता चल जाता है। चूँकि शीर्षकमें निबन्धका सारा निचोड़ अुठाकर रख देना होता है, अतः शीर्षक बनाना सरल काम नहीं है। अुपयुक्त शीर्षक देनेकी योग्यता प्राप्त करनेके लिअे सतत प्रयत्न करते रहनेकी आवश्यकता है। शीर्षक जितना ही गंभीर और स्वाभाविक होता है अुतनी ही तेजीसे वह पाठकको निबन्ध पढ़नेकी ओर आकर्षित करता है अतः शीर्षकके चुननेमें अत्यन्त धीरज अेवं समझदारीसे काम लेना चाहिअे। शीर्षक, विषयके अनुरूप, छोटा तथा अर्थ-पूर्ण होना चाहिअे।

निबन्धका शीर्षक

हमें यह स्मरण रखना चाहिअे कि अत्यन्त संक्षेपमें अपनी भावनाओं और विचारोंको व्यक्त करनेका काम अेक अत्यन्त कठिन कार्य है। यदि

दूसरे शब्दोंमें कहना चाहें तो कह सकते हैं कि यह तो 'गागरमें सागर भरना' है। अिसमें लेखक तभी सफल हो सकता है जब वह विषयकी सीमा और-लेखन शैलीमें सामञ्जस्य स्थापित कर सकनेमें समर्थ हो। निन्बधके आकारका निर्णय तो अधिकांशतः विषयकी सीमा निर्धारित करनेके बाद ही किया जा सकता है। विषय लेखकसे जितना माँगता हो अुतना ही अुसे देना पड़ता है और देना चाहिअे। अिसीके आधारपर विस्तारकी परिधि निश्चित होती है। यह सब कुछ होनेपर भी अेक बात नितान्त सत्य है कि जो निबन्ध जितने ही कम पृष्ठोंमें परन्तु भाव-पूर्ण शब्दोंमें अधिक-से-अधिक जानकारी देते हुअे लिखा जाअेगा वह अुतना ही अुत्तम निबन्ध माना जाअेगा। अुसमें व्यक्त विचारोंके आधारपर लेखककी प्रतिभा तथा अुसके व्यक्तित्वका पता चलेगा।

निबन्धका आकार

अूपर दी गयी बातोंसे यह तो पता चल ही जाता है कि निबंध सफल है या असफल अिसका निर्णय अुसमें दी हुअी सामग्री अथवा जानकारीके आधारपर ही हो सकता है। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि यह जानकारी अथवा सामग्री कहाँसे अेकत्रित की जा सकती है। अिसमें भिन्न-भिन्न साधनोंको काममें लाया जाता है — १. **निरीक्षण** २. **पर्यटन** ३. **स्वाध्याय** और ४. **सत्संग**।

निबन्धकी सामग्री

१. अपने ज्ञान-भंडारकी वृद्धिका सबसे बड़ा साधन है **निरीक्षण**। हमें हर चीजको सजग रहकर देखना चाहिअे और अुसके मर्मको समझनेका सतत प्रयत्न करना चाहिअे। प्रकृतिके सौंदर्यको यदि हम आँख खोलकर देखते रहें तो निश्चय ही वह हमें कुछ न कुछ विशेष प्रेरणा देगा। अुसी तरह पक्षियोंका प्रतिदिन होनेवाला कलरव, प्रतिदिन होनेवाले सूर्योदय और सूर्यास्तका वह अनुपम सौंदर्य, फूलोंकी अलौकिक सुगंध आदि संसारकी सभी

वस्तुओं अेवं घटनाओंको यदि हम जागरूक रहकर देखें तो निश्चय ही हमें तरह-तरहकी प्रेरणाअें मिलेंगी और अुसके आधारपर हमारे ज्ञानमें वृद्धि होगी ।

२. ज्ञानवृद्धिका दूसरा साधन है **पर्यटन** । पर्यटन अेवं निरीक्षण साथ-साथ होते हैं । बहुतसे स्थानोंपर घूमनेसे हम अधिकसे अधिक तथा तरह-तरहके लोगोंके सम्पर्कमें आते हैं। अतः किसी भी विषयकी हमारी जानकारी बढ़ती है । यदि हमने कभी हवाअी-यात्रा न की हो तो स्वभावतः हम अुसका सही वर्णन नहीं कर पाअेंगे और न अैसी यात्रा करते समय होनेवाले अनुभवोंका ही यथातथ्य चित्रण कर सकेंगे । जिसने-समुद्र देखा ही न हो, वह कैसे अुसकी विशालताका अथवा अुसके संबंधकी अन्य बातोंका चित्रण कर सकेगा । पूर्णिमाकी चाँदनी रातमें ताजमहलका अनुपम सौंदर्य देखनेपर ही तो अुसका सजीव वर्णन किया जा सकेगा ।

३. ज्ञानके बढ़ानेका तीसरा साधन **स्वाध्याय** है । लेखकके लिअे यह सदा संभव नहीं होता कि वह बहुत अधिक पर्यटन कर सके । समयके साथ-साथ अिसमें खर्चका प्रश्न भी अुठता है । पर्यटन खर्चीला होनेके कारण जहाँ यह संभव न हो वहाँ स्वाध्याय ही अुत्तम है । यह बहुत बड़े अंशमें पर्यटनकी कमीको पूरा कर देता है । स्वाध्यायसे विचारोंमें प्रौढ़ता आती है तथा अुनका संस्कार होता है ।

अध्ययनसे केवल मनोविनोद ही होता हो अैसी बात नहीं है । अुससे ज्ञान भी प्राप्त होता है । अतः ज्ञानकी वृद्धि चाहनेवालोंको अैसे ही साहित्यका अध्ययन करना चाहिअे जिसमें भाषाके साथ-साथ भाव भी अूँची कोटिके हों ।

४. **सत्संगका** हमारे जीवनपर बहुत बड़ा असर पड़ता है । कभी-कभी अन्य साधनोंका हमपर असर नहीं हो पाता । पर सत्संग चमत्कारिक ढंगसे हमारे विचारोंमें, रहन-सहनमें परिवर्तन कर देता है ।

सभी समय न तो हम अध्ययन ही करते हैं और न पर्यटन ही सभीके लिअे संभव होता है। अतः हमें अैसे लोगोंके साथ रहना चाहिअे जिनका ज्ञानका भंडार बहुत बड़ा हो, जो सज्जन हों। सज्जनोंके साथ पवित्र वातावरणमें रहनेपर हमारे चरित्रपर, हमारे सोचनेके ढंगपर, हमारे भावोंपर अुसका बड़ा ही अनुकूल परिणाम होगा।

अूपर दिया हुआ विवेचन निबंधकी सामग्री जुटानेकी दृष्टिसे हमारी सहायता करता है। पर सामग्रीके साथ-साथ अुसके अुपयोग करनेके ढंगकी भी जानकारी आवश्यक है। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि निबंध-लेखनमें कुशलता प्राप्त करना सतत प्रयत्नोंपर निर्भर है; फिर भी यह तभी संभव है जब लेखक निबंध रचनाके तत्वोंसे भी पूरी तरह परिचित हो। प्रधान रूपसे निबंध-रचनाके तीन तत्व होते हैं—**१. प्रस्तावना २. विवेचन** और **३. परिणाम**।

निबंध-रचनाके तत्व

१. अुपन्यास, कहानी आदिका अध्ययन करते समय आपने यह देखा होगा कि सभी जगह आरंभ या **प्रस्तावना**के सुन्दर तथा प्रभावशाली होनेपर अत्यधिक जोर दिया गया है। यह अेक अैसा अंश है जो पाठकको सहजहीमें अपनी ओर आकर्षित कर लेता है तथा पाठकमें पूरी रचना पढ़नेकी जिज्ञासाको अुत्पन्न करता है। शीर्षकके बाद यही अंश महत्वपूर्ण होता है। अतः लेखके आरम्भमें अिस अंशमें कुछ अैसे वाक्योंको लिखना चाहिअे जिससे पाठकोंका ध्यान विषयकी ओर आकर्षित हो जाअे। यह अंश अितना महत्वपूर्ण है कि अिसीपरसे पाठक लेखककी लेखनीकी शक्ति तथा अुसकी योग्यताकी जाँच कर लेता है। विषयके अनुरूप भूमिका बनानेमें ही लेखककी कुशलताका पहला परिचय मिलता है।

प्रस्तावनामें प्रास्ताविक-अंश बहुत बड़ा नहीं होना चाहिअे। प्रस्तावनाका आकार छोटा हो। क्योंकि बहुत बड़ी भूमिकामें

कोभी आकर्षण नहीं रह जाता है । प्रस्तावना आकर्षक हो, सुरुचिपूर्ण हो तथा निबंधके मुख्य विषयसे अुसका गहरा संबंध हो । अैसा न हो कि वह विषयसे बहुत दूर जा पड़े ।

प्रस्तावनाको आकर्षक बनानेके लिअे कुछ लेखक प्राकृतिक दृश्यसे निबंधकी भूमिकाका प्रारंभ करते हैं जिसमें ऋतु-वर्णन, प्रकृति-वर्णन या यात्रा-वर्णन आदि होते हैं। कभी-कभी किसी बड़े कवि या लेखककी किसी कविता या लेखसे महत्वपूर्ण अुद्धरण भी दिअे जाते हैं। किसी धार्मिक सिद्धांत अथवा लोकोक्तिका भी प्रयोग किया जाता है । अैसी भूमिकाका प्रयोग अधिकतर धार्मिक, सामाजिक अथवा विवेचनात्मक विषयोंवाले निबंधोंमें होता है । कभी-कभी किसी कहानी या अैतिहासिक घटनासे भी निबंधकी भूमिका बाँधी जाती है । अैसी भूमिका अधिकांशतः सामाजिक अथवा व्याख्यात्मक निबंधोंमें अुपयोगी होती है । कभी-कभी निबंधके विषयकी परिभाषासे ही भूमिकाका आरंभ होता है (विशेषकर वैज्ञानिक अथवा गवेषणात्मक-खोजपूर्ण-निबन्धोंमें) । तुलनात्मक या विवेचनात्मक, निबंधोंमें विषयके प्रतिकूल विषय लेकर निबंधकी प्रस्तावना तैयार की जाती है । विषयकी आवश्यकता अेवं अुपयोगिता दर्शाते अे भी भूमिकाका आरंभ किया जाता है । और कहीं-कहीं तो विषयको लेकर अेकदम आरंभ कर दिया जाता है । लेखक अपनी योग्यता, प्रतिभा तथा विषयकी आवश्यकताके अनुसार भूमिका बना सकता है ।

२. **विवेचन** निबन्धका मुख्य अंश है । विषयका प्रतिपादन और रस-परिपाककी दृष्टिसे निबंधकी सफलता अिसी अंशपर निर्भर होती है । अिस अंशमें लेखककी योग्यता तथा अुसकी प्रतिभाका पता लग जाता है । अिस अंशमें सफलता प्राप्त होनेके लिअे कुछ साधारणसे नियमोंकी ओर अवश्य ध्यान दिया जाना चाहिअे । लिखनेसे पहले विषयपर थोड़ी देरतक विचार करनेकी अत्यन्त आवश्यकता है । विषयके संबंधमें अबतक क्या-क्या जानकारी

है अिसे मालूम कर, संकेत रूपमें लिख लेना चाहिअे और नअी बात यादआनेपर अुसे फिर नोट कर लेना चाहिअे। अिस तरह मनन करनेपर जो सामग्री संकेतोंके रूपमें अिकट्ठी हो जाअे अुसे क्रमवार लगा लिया जाअे और भूमिकाके बाद अुन-पर क्रमवार विचार प्रकट किअे जाअ। प्रत्येक संकेतका अेक-अेक अनुच्छेद (पैरा) बनाया जाअे। यह ध्यान रखना चाहिअे कि आवश्यक बातोंपर ही जोर दिया जाअे। अनावश्यक बातोंको अनावश्यक महत्व प्राप्त न हो। दिअे जानेवाले संकेतमें और अधिक बल तथा प्रभाव लानेके लिअे बीच-बीचमें किसी प्रसिद्ध लेखक अथवा कविकी रचनाओंसे अुद्धरण भी दिअे जा सकते हैं। यह ध्यान रखना चाहिअे कि विषयका प्रतिपादन करते समय कोअी अैसी बात तो नहीं कही जा रही है जो अपने ही द्वारा अेकबार कही हुअी बातके विरुद्ध पड़ती हो अर्थात् विचारोंमें विरोध न आने पाअे। अपने ही विचारोंका अपने ही द्वारा खंडन न हो जाअे। आदिसे अन्ततक निबन्धका विषय अैसा कसा रहे कि पाठकका चित्त अुससे हटने न पाअे वरन् अुसमें रम जाअे।

३. **परिणामको** निबंधका अंत भी कहा जा सकता है। अिस अंतमें पाठक अपने विवेचनसे किस परिणामपर पहुँचना चाहता है अुसे व्यक्त किया जाता है। अतः निबन्धका अंत अैसा होना चाहिअे जिससे पाठककी निबन्धके विषय सम्बन्धी सारी जिज्ञासा शान्त हो जाअे। परिणामवाले अंशको अधिक लम्बा बनानेकी आवश्यकता नहीं है। अेक ही अनुच्छेदमें यदि निबन्धका सारांश प्रकट कर दिया जाअे तो अच्छा है। कभी-कभी भूमिकाके शब्दोंको दुहराकर ही निबन्धका अन्त कर दिया जाता है। पर यह तभी संभव है जब भूमिकामें ही निबन्धके विषयका अुद्देश्य वर्णित हो। कभी-कभी लेखक, निबन्धमें कोअी परिणाम नहीं निकालता। वह केवल प्रतिपाद्य विषयपर प्रत्येक दृष्टिसे विचार करके मौन हो जाता है और निर्णय पाठकोंपर छोड़ देता है।

प्रत्येक साहित्यिक रचनामें भाव और भाषाकी प्रधानता होती है। भाषा वह माध्यम है जिसके द्वारा लेखक या वक्ता अपने विचारोंको प्रकट करता है। अतः अैसी भाषाका प्रयोग किया जाना चाहिअे जो हमारे विचारोंको सही-सही रूपमें पाठक अथवा श्रोताके सामने अुपस्थित कर दे। अैसा होनेके लिअे यह आवश्यक है कि भाषा व्याकरणके नियमानुकूल हो, अुच्चकोटिकी हो तथा अैसी हो कि जिसका प्रयोग अुच्चकोटिके लेखकों द्वारा अुनकी रचनाओंमें किया जाता रहा हो। निबन्धकी भाषा शुरूसे अन्ततक अेक ही प्रकारकी रहे। वह प्रवाह-युक्त हो। विषयको बोधगम्य बनानेकी दृष्टिसे लम्बे तथा मिश्र वाक्योंके स्थानपर छोटे-छोटे वाक्योंका प्रयोग अधिक अच्छा होता है। भाषा सरल अेवं सुबोध हो। क्लिष्ट भाषासे पाठकका जी अूब जाता है। निबन्धकी भाषापर लेखकके व्यक्तित्वकी छाप होनी चाहिअे। भाषा स्वयं पुकारकर कह दे कि मैं अमुक लेखककी हूँ। भावोंके अनुकूल भाषामें अुतार-चढ़ाव होनेसे प्रभावकी अुत्पत्ति होती है।

निबन्धकी भाषा

विषयोंकी विविधताकी दृष्टिसे निबन्धका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक कहा जा सकता है। वस्तुतः संसारकी कोअी अैसी वस्तु नहीं है जिसपर निबन्ध न लिखा जा सकता हो। विषयकी विभिन्नताकी दृष्टिसे निबन्धोंके चार प्रकार माने जा सकते हैं— **१. वर्णनात्मक निबंध २. कथात्मक या विवरणात्मक निबंध ३. विचारात्मक या विवेचनात्मक निबंध और ४. भावात्मक निबंध**। छोटे-मोटे कुछ और भी भेद हैं जैसे विश्लेषणात्मक, विवादात्मक आदि, पर प्रधान भेद चार ही हैं।

निबन्धके भेद

१. वर्णनात्मक निबंधोंमें वर्णनकी प्रधानता होती है। अिन निबंधोंमें वर्णन किअे जानेवाले पदार्थकी बहुत विस्तृत विवेचना की जाती है। अिस।

प्रकारके निबंधोंमें प्राकृतिक अथवा अप्राकृतिक पदार्थोंका वर्णन होता है। अुदाहरणार्थ नदी, पहाड़, झरना, समुद्र, वायु, रेल, तार, जहाज, नगर, साअिकिल, ग्रामोफोन, दियासलाअी आदि। यात्रा, प्रदर्शनी, त्योहार और जीवनकी मनोरंजक घटनापर भी वर्णनात्मक निबंध लिखे जा सकते हैं।

२. **कथात्मक** या विवरणात्मक निबंधोंके अंतर्गत कथाओं, घटनाओं, युद्धों, महापुरुषोंके जीवन वृत्तांतों, नरेशोंकी शासन-पद्धतियों आदिका अुल्लेख हो सकता है। अैसे निबंधोंमें वास्तविक घटनाओंके साथ काल्पनिक घटनाओंका भी समावेश किया जा सकता है। **वर्णनात्मक** और **कथात्मक** निबंधोंका अंतर बताते हुअे अेक लेखकने लिखा है "वर्णनात्मक निबंध चित्र-लेखनसे संबंध रखता है। चित्रकी तरह अपने समस्त अंगोंका रहस्य पाठकोंके सामने खोलकर रख देता है। प्रतिपाद्य विषयसे संबंधित सभी बातोंका अुसमें सविस्तर यथातथ्य वर्णन होता है। कथात्मक निबंधमें कार्य-कारणका संबंध दिखाते हुअे अेक घटनाके बाद दूसरी घटनाका वर्णन होता है।

३. **विचारात्मक** या विवेचनात्मक निबंधोंमें अमूर्त विषयोंपर विचार प्रकट किअे जाते हैं। अुदाहरणार्थ चिंता, आशा, क्रोध, धैर्य, दया, अहिंसा, भाव, मनोविकार आदि। दार्शनिक, आध्यात्मिक तथा मनोवैज्ञानिक विषयोंकी विवेचना भी अिन्हीं निबंधोंके अंतर्गत आती है। अिस प्रकारके निबंधोंके लिखनेमें गंभीर अध्ययन, मनन और जीवनमें प्राप्त गंभीर अनुभवोंकी आवश्यकता होती है। सर्वश्री रामचंद्र शुक्ल, श्यामसुन्दरदास तथा जैनेन्द्रजीके निबंध अिसी कोटिके निबंध हैं।

४. **भावात्मक** निबंधोंका संबंध भावनासे अर्थात् हृदयसे होता है। अैसे निबंधोंमें बुद्धितत्वकी अपेक्षा भावतत्व प्रधान होता है। अिन्हें हम

कवित्वपूर्ण निबंध भी कह सकते हैं। डा. रघुवीरसिंह, अध्यापक पूर्णसिंह पद्मसिंह शर्मा आदिके निबंध अिसी शैलीके अंतर्गत आते हैं।

तर्क-वितर्कको लेकर विषयका जिन निबंधोंमें निरूपण किया जाता है अुन्हें हम तार्किक निबन्ध कहते हैं। अैसे निबंधोंमें लेखक अपने मतके अनुसार विरोधी अथवा संगत मतका तर्क और दृष्टान्तसे खंडन-मंडन करता है। धार्मिक, सामाजिक, दार्शनिक तथा राजनैतिक विषय अिसी श्रेणीके अंतर्गत आते हैं।

सफल निबंध लेखक बननेके लिअे निरीक्षण, अध्ययन, चिन्तन और अभ्यासकी अत्यंत आवश्यकता है।

समालोचना

जन साधारण समालोचना शब्दसे गुण और दोषोंके विवेचनका ही अर्थ लगाते हैं। साहित्यमें भी अिसका लगभग यही अर्थ चलता है। हिन्दीका

व्युत्पत्ति तथा अर्थ

समालोचना शब्द संस्कृतकी **'लुच्'** धातुसे बना है। **'लुच्'** का अर्थ है देखना, समीक्षा करना। यह वही धातु है जो **'लोचन'** शब्दमें है। अिस तरह आलोचनाका मुख्य क्षेत्र साहित्यके तरह-तरहके पक्षोंकी समीक्षा, सूक्ष्म-विवेचन ही है। आलोचनामें कविता, नाटक तथा अुपन्यासकी व्याख्या तो की ही जाती है, स्वयं आलोचनात्मक ग्रंथोंकी भी व्याख्या की जा सकती है। **'सम्पूर्ण साहित्यको यदि जीवनकी व्याख्या मानें तो आलोचनाको अुस व्याख्याकी व्याख्या'** कहा जा सकता है। अतः किसी भी ग्रंथका समीक्षात्मक ढंगसे अध्ययन करके, दी गअी सामग्रीका विश्लेषण करके तथा अुसके संबंधमें कुछ निर्णय करके जो मत बनता है, अुसके प्रकट करनेको ही आलोचना कहा जाअेगा।

अिस तरह आलोचनाका मुख्य क्षेत्र साहित्यके विविध पक्षोंकी समीक्षा अथवा सूक्ष्म विवेचना ही है। आलोचक कवि या लेखककी

साहित्यिक कृति (रचना) को समझकर दूसरोंको समझानेका प्रयत्न करता है। **'समालोचक साहित्यका प्रहरी (पहरेदार) है; ठीक वैसा ही जैसा पत्रकार समाजका।'** जिस प्रकार जागरूक प्रहरी केवल अुन्हीं व्यक्तियोंको भीतर जाने देता है जिन्हें सचमुच भीतर जानेका अधिकार है अथवा जो जाने योग्य हैं; अुसी तरह समालोचक भी लेखककी अुसी कृतिको साहित्यके क्षेत्रमें प्रवेश करने देता है अथवा पनपने देता है जो अुचित हो। यदि संक्षेपमें कहना चाहें तो हम कह सकते हैं कि वह **'साहित्यका रक्षक है।'** साहित्यकी प्रत्येक गति-विधिपर वह अपनी आलोचनात्मक अेवं तीखी दृष्टि रखता है।

समालोचकका कार्य

कुछ विद्वानोंके विचारोंके अनुसार आलोचकोंका कार्य भी कलाकारोंके समान ही क्रियात्मक है। **'कलाकार कला-पूर्ण वस्तुके निर्माणके पहले अपनी रुचिके अनुसार संसार अथवा कल्पना-क्षेत्रोंसे सामग्री अेकत्र करेगा, अुनमें चुनाव करेगा, अुनकी अुपयोगिता-अनुपयोगिता देखेगा और चुनी हुअी चीजोंमें सौंदर्यकी सृष्टि करके अुन्हें मोहक रूप देकर हमारे हृदयको छूनेका प्रयास करेगा।'**

आलोचककी दृष्टि व्यापक होती है सीमित नहीं, और वह सहानुभूति और समवेदनापूर्वक साहित्यका निरीक्षण करता है। अिसी कारण वही समालोचक सम्मानित होता है जिसने हमसे स्नेहका संबंध स्थापित कर लिया। आलोचककी श्रेष्ठता भी अिसीमें है कि हमारे हृदयको वह अपनी स्नेहपूर्ण दृष्टिसे प्रभावित किया करे। आलोचक त्रिकाल-दर्शी है, दृष्टा, ऋषि और कवि। अितनी बड़ी जिम्मेदारीको निभानेके लिअे आलोचकके लिअे सबसे पहले विषयका ज्ञान अपेक्षित है। बिना विषयके ज्ञानके पुस्तकके गुण दोषोंपर विवेचन करना कैसे संभव होगा! साधारणतः कुछ लोगोंका अनुमान है कि कोअी भी आलोचक हो सकता है। अिस अनुमानसे आलोचना-क्षेत्रमें बड़ी विषमता फैल गअी है।

अूपरके विवेचनसे यह तो स्पष्ट हो ही गया है कि आलोचकका कार्य सरल नहीं है। वह अत्यन्त कठिन कार्य है और अप्रिय भी। यूरोपीय-साहित्यके क्षेत्रमें संभवतः आलोचक वर्ग ही अेक अैसा वर्ग रहा है जिसे सबसे अधिक अपमानित ही नहीं निरादृत भी होना पड़ा। हिन्दी-साहित्यमें भी यह दृश्य कुछ कम देखनेमें नहीं आता। आलोचककी अप्रिय स्थितिका वर्णन करते हुअे अेक लेखकने ठीक ही कहा है 'संसारमें बड़े-बड़े साहित्यकों, राजनीतिज्ञों, नेताओं और क्रांतिकारियों तथा सुधारकोंके स्मारक स्थापित किअे जाते हैं, परन्तु किसी समालोचकके सम्मानमें अभी तक तो कोअी स्मारक बना हुआ देखनेमें नहीं आया।'

आलोचकके आवश्यक गुण

यद्यपि अलोचकका सम्मान नहीं हो पाया फिर भी अिससे अैसा नहीं कहा जा सकता कि साहित्यमें समालोचकका स्थान कम महत्वपूर्ण है। वह सुन्दर और असुन्दर रचनाओंमें भेद करके साहित्यके मूलमें कार्य करनेवाली प्रवृत्तियोंकी खोज करता है और अिस तरह साहित्यके पथ-प्रदर्शकका कार्य करता है। अपनी अिस जिम्मेवारीको सफलता-पूर्वक निभानेके लिअे समालोचकमें कुछ विशिष्ट गुण होने आवश्यक हैं। अेक पाश्चात्य विद्वानने अुसमें निम्नलिखित गुणोंका होना आवश्यक माना है **१. सुनिश्चितता २. स्वातंत्र्य ३. सूझ ४. श्रेष्ठ विचार ५. अुत्साह ६. हार्दिक-अनुभूति ७. गंभीरता ८. ज्ञान तथा ९. अथक परिश्रम।**

साधारणतया श्रेष्ठ आलोचकको निस्पृह होनेकी आवश्यकता है। अिसे ही हम दूसरे शब्दोंमें विराग कहेंगे। रागहीन आलोचक ही पक्षपातहीन आलोचक होगा। और वह अपने सोचने-समझनेमें स्वतंत्रतापूर्वक अपनी बुद्धिका अुपयोग कर सकेगा। न तो वह किसी वादमें ही फँसेगा और न अुसे अन्य कोअी शक्ति ही प्रभावित कर पाअेगी। लेकिन आलोचना

करते समय अुसे जहाँ अेक ओर विरागी होना है, वहीं अुसे रचनाकार तथा अुसकी रचनाके प्रति श्रद्धा अेवं सहानुभूतिसे भी काम लेना है । अुसे निर्मम नहीं होना है । आलोचकके मुख्यधर्मकी विवेचना करते हुअे अेक विज्ञ साहित्यिकने कहा है, "**संसार तथा जीवनके विशिष्ट विचारोंका सुबुद्धिपूर्ण संचय अथवा अुनका सम्यक् ज्ञान प्राप्त कराना, जिसके फलस्वरूप मौलिक तथा सत्य विचार-धाराका अविरल प्रवाह होता रहे ।**" अुसी तरहसे वाद विशेषके प्रपंचसे बचनेकी सलाह देते हुअे यह भी कहा गया है कि, [1] '**श्रेष्ठ आलोचना न तो किसी वर्ग अथवा वाद-विशेषका आदर अथवा प्रचार करेगी और न अुसमें लिप्त हो जाअेगी ।**"

कलाकारकी आत्मातक पहुँचनेके लिअे आलोचकको श्रद्धा तथा सहानुभूतिको लेकर ही चलना होता है । अिसके बिना न तो वह कलाकारकी आत्मातक ही पहुँच पाअेगा और न अपने अुद्देश्यमें ही सफल हो सकेगा, वरन् रागद्वेषमें पड़कर निश्चय ही पथभ्रष्ट हो जाअेगा ।

निष्पक्षता समालोचकका दूसरा बड़ा गुण है । पक्षपातभरी आलोचना कभी भी आलोचना नहीं कही जा सकती । व्यक्तिगत राग या द्वेषसे प्रेरित होकर की गयी आलोचना स्तुति या निन्दा-मात्र ही कही जाअेगी । अिस तरहकी आलोचनासे सत्साहित्यका बहुत बड़ा अहित होनेकी सम्भावना होती है ।

आलोचकका ज्ञान बहुत विस्तृत होना चाहिअे अर्थात् समालोचकमें विद्वत्ताका होना अत्यन्त आवश्यक है । अपनी भाषाके साहित्यके ज्ञानके साथ अुसे अन्य भाषाओंके साहित्यका ज्ञान होना भी आवश्यक है, तभी वह सुन्दर और सही समालोचना कर पाअेगा । अन्यथा अुसकी समालोचना ठोस नहीं हो पाअेगी और वह अेकांगी होगी । अुसे साहित्यकी सभी समस्याओंका

[1] आलोचना अितिहास तथा सिद्धान्त ले०—डॉ. अेस. पी. खत्री

पूरा ज्ञान होना चाहिअे । आलोच्य ग्रंथ अेवं रचनाके गुण-दोषोंकी तहतक पहुँचनेकी क्षमता किसी आलोचकमें तभी आ सकती है जब कि वह पैनी दृष्टि रखता हो । और विद्वत्तासे ही यह पैनी दृष्टि प्राप्त हो सकती है । अतः आलोचकको विद्वान होना चाहिअे ।

विद्वत्ता आदि अन्य गुणोंके साथ-साथ आलोचकमें स्वाभाविक प्रतिभाका भी होना आवश्यक है । स्वाभाविक प्रतिभाके बिना पांडित्य तथा अन्य गुण विशेष अुपयोगी नहीं होते । स्वाभाविक प्रतिभाके बलपर ही आलोचक अपने कथन और निर्णयको युक्तियुक्त बनानेमें समर्थ हो सकता है ।

अिन सब गुणोंके अतिरिक्त आलोचककी रुचि मँजी हुअी होनी चाहिअे । अुसे अपने अुद्देश्यका ज्ञान होना चाहिअे । अपने पक्षपात हीन निर्णयको प्रकट करनेका अुसमें साहस होना चाहिअे । अपने निर्णयको प्रकट करनेका अुसका ढंग रोचक होना चाहिअे जिससे सहजहीमें पाठकके हृदयमें वह अपने प्रति सहानुभूति अुत्पन्न कर ले । आलोचनामें माधुर्य-पूर्ण शैलीका पूरा निर्वाह होना चाहिअे अर्थात् कलाकारके समान वह स्वयं भी श्रेष्ठ तथा सुन्दर और चित्ताकर्षक शैलीमें अपने विचारोंको पाठकोंके सामने रखे । अिससे अुसकी लोक-प्रियता बढ़ेगी । चित्ताकर्षक शैली न रहनेके कारण कअी आलोचक अपनी लोकप्रियता नहीं बढ़ा सके ।

अूपर दिये हुअे विवेचनसे अितना तो स्पष्ट हो ही गया है कि साहित्यके अन्य अंगोंकी भाँति समालोचना भी अुसका अेक प्रमुख अंग है । यदि अिस

आलोचनाके प्रकार

अंगका पूरा विकास न हुआ हो तो साहित्य आजके युगमें अपूर्ण अेवं अविकसित ही समझा जाअेगा । समालोचनाका क्षेत्र अब बहुत विस्तृत हो चुका है । साहित्यके विभिन्न अंग और अुनके मूल्य-निर्धारणके अतिरिक्त अुसके मूलमें कार्य करनेवाली प्रवृत्तियोंका विश्लेषण करना भी समालोचनाका ही कार्य है

साहित्य-समालोचनाके दो अंग होते हैं अेक तो **शास्त्र**, दूसरा **परीक्षण**। शास्त्रके अंतर्गत साहित्यके विभिन्न अंगों काव्य, नाटक अुपन्यास, कहानी, निबंध आदिके रचनातंत्रके नियमोंका वर्णन रहता है। परीक्षणमें साहित्यकी अुसके निश्चित सिद्धांतोंके आधारपर परख होती है। कभी-कभी निश्चित सिद्धांतोंकी अुपेक्षा करके भी यह परीक्षा की जाती है।

परीक्षा करनेकी विविध प्रणालियोंको लेकर आलोचनाके कअी भेद किये गअे हैं जिनमेंसे मुख्य ये हैं—

१. **आत्म-प्रधान आलोचना** (Subjective Criticism)
२. **सैद्धांतिक आलोचना** (Speculative Criticism)
३. **व्याख्यात्मक आलोचना** (Inductive Criticism)
४. **निर्णयात्मक आलोचना** (Judicial Criticism)
५. **तुलनात्मक आलोचना** (Comparative Criticism)
६. **मनोवैज्ञानिक आलोचना** (Psychological Criticism)

१. **आत्म-प्रधान** आलोचना भावपूर्ण होती है। अिसमें आलोचकके हृदयका अुल्लास व्यक्त होता है। लेखक या कविकी रचनाका जैसा प्रभाव आलोचक पर पड़ता है अुसे वह अुसी रूपमें व्यक्त करता है। अिस तरहकी आलोचनामें आलोचक किसी विशेष प्रकारकी पद्धतिको नहीं अपनाता। वह अपनी रुचिके अनुसार ही ग्रंथकी आलोचना करके अपना निर्णय देता है।

कुछ साहित्यिक अिस तरहकी आलोचनाको विशेष अुपयोगी नहीं मानते। कुछ अन्य साहित्यिक अैसे हैं जो अिस प्रकारकी आलोचनाको अुपयोगी मानते हैं। अैसे लोगोंका कहना है कि किसी भी रचना या कृतिकी अच्छाअी और बुराअीका मापदंड आलोचककी रुचिसे बढ़कर और क्या हो सकता है।

आत्म-प्रधान आलोचनाका अेक सुन्दर अुदाहरण यह है——

"यदि 'सूर-सूर तुलसी ससी, अुडुगन केसवदास' है, तो बिहारी 'पीयूष-वर्षी मेघ' है, जिसके अुदय होते ही सबका प्रकाश आच्छन्न हो जाता है, फिर जिसकी वृष्टिसे कवि-कोकिल कुहकने, मन-मयूर नृत्य करने और चतुर चातक चुहकने लगते हैं। फिर बीच-बीचमें जो लोकोत्तर भावोंकी विद्युत् चमकती है वह हृदय छेद जाती है।"

बिहारी सतसअीके सम्बन्धका यह दोहा भी अिसी श्रेणीकी समालोचनाके अन्तर्गत आता है——

सतसअियाके दोहरे, ज्यों नाविकके तीर।
देखनमें छोटे लगैं, घाव करैं गम्भीर॥

२. **सैद्धान्तिक** आलोचनाको दूसरे शब्दोंमें हम **आदर्शात्मक** आलोचना भी कह सकते हैं। अिसमें आलोचनाके सिद्धान्तोंको निश्चित कर लिया जाता है और फिर अुन्हीं निश्चित सिद्धान्तोंके आधारपर किसी रचना अथवा कृतिको कसौटीपर कसा जाता है। अिन नियमों या सिद्धान्तोंके प्रतिपादनमें आलोचक अपनी रुचिको अधिक महत्व प्रदान नहीं कर सकता। अुसे या तो प्राचीन शास्त्रीय नियमोंके प्रकाशमें नये नियम बनाने होते हैं या अेकदम नये नियम।

कुछ साहित्यिकोंका अैसा मानना है कि अिस तरहसे सिद्धान्तोंकी 'बेड़ियों' को पहनाकर लेखककी आत्माको पूरी तरहसे समझना बहुत कठिन है। बहुत बार तो अैसा भी होता है कि सिद्धान्तोंके अनुसार जो बातें कम महत्वपूर्ण दिखाअी देती हैं अथवा निरर्थक समझकर छोड़ दी जाती हैं वे ही अधिक महत्वपूर्ण होती हैं। वही साहित्यका प्राण होता है। फिर भी अितना तो मानना होगा कि आखिर कुछ सिद्धान्तोंको स्थिर किअे बिना तो हम बिना किसी निश्चित मार्गके अिधर-अुधर भटकते ही फिरेंगे।

सर्वश्री श्यामसुन्दरदासका साहित्यालोचन, रामदहिन मिश्रका काव्यालोक, रामचन्द्र शुक्लकी चिन्तामणि, गुलाबरायजीका सिद्धान्त और अध्ययन आदि पुस्तकें सैद्धान्तिक आलोचनाके अन्तर्गत आती हैं।

३. **व्याख्यात्मक** आलोचनामें आलोचक सब प्रकारके सिद्धान्तों या आदर्शोंका त्याग करके कविकी अन्तरात्मामें प्रवेश करता है। अुसके आदर्शों, अुद्देश्यों तथा विशेषताओंकी व्याख्या करता है। अिस तरहकी आलोचनामें व्याख्या या विश्लेषणकी ही प्रधानता होती है। आजके युगमें आलोचनाका यह प्रकार सबसे अच्छा माना जाता है। व्याख्यात्मक आलोचना करनेवाला आलोचक अन्वेषक अधिक होता है। वह न्यायाधीशका काम नहीं करता। वह तो रचनाके अुद्देश्य, अुसकी विशेषताओं तथा कवि या लेखकके आदर्शों, प्रेरणाके अुद्गम स्थानों आदि की सूक्ष्म चर्चा कर देता है। व्याख्यात्मक आलोचनामें यह माना जाता है कि सभी कवि या लेखक अेक ही प्रकृतिके नहीं होते। सबकी प्रकृति भिन्न-भिन्न होती है अतः सभी कवियोंको अेक ही नियम या माप-दंडसे नापना अुचित नहीं।

कहनेका तात्पर्य यह कि व्याख्यात्मक आलोचनाके अन्तर्गत रचनाओंकी परीक्षा निर्जीव नियमों द्वारा नहीं की जाती। प्रकृतिके अन्य रूपोंकी ही तरह साहित्यको भी विकासशील माना जाता है अतः आलोचक वैज्ञानिककी भाँति अुसकी व्याख्या करता है। अुसे निर्णय देनेकी आवश्यकता नहीं होती। वह तो अेकमात्र यही बताता है कि रचनामें क्या व्यक्त किया गया है और अमुक रचनाके करनेमें रचनाका अुद्देश्य क्या था। व्याख्यात्मक आलोचनाका यह अुदाहरण देखिअे—

'हृदयके पारखी सूरने सम्बन्ध-भावनाकी शक्तिका अच्छा प्रसाद दिखाया है। कृष्णके प्रेमने गोपियोंमें अितनी सजीवता भर दी है कि कृष्ण क्या कृष्णकी मुरली तकसे छेड़-छाड़ करनेको अुनका जी चाहता है। हवासे

लड़नेवाली स्त्रियाँ देखी नहीं तो कम-से-कम सुनी बहुतोंने होंगी, चाहे अुनकी जिन्दादिलीकी कद्र न की हो। मुरलीके सम्बन्धमें कहे हुअे गोपियोंके वचनोंसे दो मानसिक तथ्य अुपलब्ध होते हैं— आलम्बनके साथ किसी वस्तुकी सम्बन्ध-भावनाका प्रभाव तथा अत्यन्त अधिक या फालतू अुमंगके स्वरूप। मुरली सम्बन्धिनी अुक्तियोंमें प्रधानता पहली बात की है, यद्यपि दूसरे तत्वका भी मिश्रण है।[1]

४- निर्णयात्मक आलोचनाको दूसरे शब्दोंमें शास्त्रीय आलोचना भी कहा जा सकता है। क्योंकि आलोचक, साहित्यसे संबंध रखनेवाले शास्त्रीय या सैद्धांतिक नियमोंके आधारपर किसी कृतिकी आलोचना या अुसके गुण दोषोंको बताते हुअे अुसका मूल्य निर्धारित करता है। अैसा करते समय अुसका दृष्टिकोण न्यायाधीश जैसा होता है क्योंकि वह निश्चित मानदंडके आधारपर ही किसी कृतिको कसकर अुसके विषयमें अपना निर्णय देता है। अुसका यह निर्णय आलोचनाके निर्धारित तत्वोंपर ही आधारित होता है।

कुछ लोग शास्त्रीय नियमोंको अुतना महत्व नहीं देते। वे रचनाको पढ़नेपर अपनेपर पड़नेवाले प्रभावको ही विशेष महत्व देते हैं और अुसी प्रभावके आधारपर अपने निर्णय करते हैं।

कुछ आलोचक अैसे होते हैं जो शास्त्रीय नियमोंसे भी परे होकर रचनाओंके संबंधमें निर्णय देते हैं। यद्यपि अुन्हें आलोचना संबंधी शास्त्रीय नियमोंका पूरा ज्ञान होता है फिर भी वे अपना निर्णय करते समय कलाकारकी मौलिक तिभाको भी पूरी तरह ध्यानमें रखते हैं। अिस श्रेणीके आलोचक सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं।

नियमोंसे अेकदम जकड़ दिअे जानेपर स्वतंत्र प्रतिभा और काव्य-शैलीके विकासका मार्ग रुक जाता है।

[1] 'भ्रमर-गीत सारकी भूमिका' आचार्य रामचंद्र शुक्ल

सैद्धांतिक आलोचनाके ग्रंथ मम्मट और आचार्य विश्वनाथने लिखे हैं।

शास्त्रीय नियमोंके आधारपर आलोचना लिखनेवालोंमें पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा मिश्रबन्धुओंकी गिनती की जा सकती है।

सूर संबंधी नीचे दिया हुआ प्रसिद्ध दोहा निर्णयात्मक समालोचनाके अंतर्गत आता है—

सूर सूर तुलसी ससी, अुडुगण केसवदास।
अबके कवि खद्योत सम, जहँ-तहँ करत प्रकास॥

५. **तुलनात्मक** आलोचनामें दो अलग-अलग कवियोंकी अेक ही विषयपर लिखी हुअी रचनाओंकी तुलना करते हुअे विवेचना प्रस्तुत की जाती है। तुलनात्मक आलोचनामें आलोचक दोनों रचनाओंका विस्तृत अध्ययन करके अुनकी अलग-अलग समानताअें तथा असमानताअें सामने रखते हुअे किसी अेक निर्णयपर पहुँचता है। किन्तु अपना यह निर्णय देते समय आलोचकको अत्यन्त सजग रहनेकी आवश्यकता है। अुसे यह पूरा ध्यान रखना होगा कि अपना निर्णय देते समय कहीं वह पक्षपात तो नहीं कर रहा है क्योंकि आलोचकका अपनी किसी विशिष्ट रुचिके कारण किसी लेखक विशेषकी ओर झुकाव हो जाना स्वाभाविक है। अतः अिस दोषसे बचनेके लिअे कुछ लोग अपना कोअी निर्णय न देते हुअे केवल समान सहानुभूतिकी दृष्टिसे तुलना मात्रको ही पाठकोंके सामने रख देते हैं। **तुलनात्मक** आलोचनाका नीचे लिखा अुदाहरण देखिअे—

'सूरदास हिन्दीके अन्यतम कवि हैं। अुनके जोड़का कवि गोस्वामी तुलसीदासको छोड़कर दूसरा नहीं हुआ। अिन दोनों महाकवियोंमें कौन बड़ा है, यह निश्चयपूर्वक कह सकना सरल कार्य नहीं। भाषापर अवश्य तुलसीदासका अधिकार अधिक व्यापक था। सूरदासने अधिकतर ब्रजकी

चलती भाषाका ही प्रयोग किया है। तुलसीने ब्रज और अवधी दोनोंका प्रयोग किया है और संस्कृतका पुट देकर अुनको पूर्ण साहित्यिक बना दिया है। परन्तु भाषाको हम काव्य समीक्षामें अधिक महत्व नहीं देते। हमें भावोंकी तीव्रता तथा व्यापकतापर विचार करना होगा। तुलसीने राम-चरितका आश्रय लेकर जीवनकी अनेक परिस्थितियों तक अपनी पहुँच दिखाअी है। सूरदासके 'कृष्णचरित्र' में अुतनी विविधता नहीं, किन्तु प्रेमकी मंजु छविका जैसा अन्तर-बाह्य चित्रण सूरदासजीने किया है वह अद्वितीय है। ....पर शुद्ध कवित्वकी दृष्टिसे दोनोंका समान अधिकार है। दोनों ही हमारे सर्वश्रेष्ठ जातीय कवि हैं।'[१]

तुलनात्मक आलोचनामें आलोचकको पूर्ण वैज्ञानिक सिद्धांतोंका अनुसरण करना और अनासक्त होकर सहानुभूतिपूर्ण हृदयसे दोनों पक्षोंकी समीक्षा करनी चाहिअे।

६. **मनोवैज्ञानिक** समालोचनाका प्रकार हिन्दीके लिअे वैसे नया ही है। जैसाकि नामसे ही पता लग जाता है अैसी समालोचनाके अंतर्गत रचनाओंके कारणों, अुद्देश्यों और आदर्शोंका संबंध अुसके लेखककी मनोवृत्ति अथवा चित्तवृत्तिके साथ जोड़ा जाता है। क्योंकि रचनाओंके रूपका, अुसमें प्रतिपादित आदर्शोंका मूलस्रोत तो कवि या लेखकका हृदय ही तो होता है। अतः अुसके अुस तरहके चित्रणमें कारणीभूत तत्कालीन आर्थिक सामाजिक अेवं राजनैतिक परिस्थितियोंका भी अन्वेषण होता है।

अेक अुदाहरण देखिअे—

"बच्चनका कवि जीवनके अुल्लाससे भी अुल्लसित हुआ है और विषादसे भी विषण्ण। अुनकी रचनाओंमें जीवनके परिस्थिति-मूलक चित्र अनेक भरे पड़े हैं। अपनी प्रिय पत्नीके देहान्तके बाद कविकी वृत्तियाँ जीवन और

[१] 'हिन्दीसाहित्य' डॉ. श्यामसुन्दरदास

जगतकी नश्वरतापर प्रहार करने लगीं और 'अेकान्त-संगीत' तथा 'निशा-निमन्त्रण' के रूपमें अुनकी सारी वेदना मुखरित हो गयी । अपने घनीभूत विषादसे अुनके दग्ध हृदयकी वाणी विकल हो अुठी है ।"

(सुधांशु)

अुपर्युक्त प्रकारोंके अतिरिक्त अैतिहासिक समालोचना प्रगतिवादी आलोचना, आदि प्रकार हैं । अिनमेंसे अन्य प्रकारोंकी अपेक्षा अैतिहासिक समालोचना विशेष प्रसिद्ध है । अिसके अतिरिक्त परिवर्तित होती हुअी परिस्थितियों तथा विचार धाराओंके आधारपर भी साहित्यकी आलोचना की जाती है । साथ ही परिस्थितियों तथा विचारधाराओंका साहित्यपर कैसे-कैसे क्या-क्या असर पड़ा अिसका भी विचार किया जाता है । अुदाहरणार्थ--

'भक्ति आन्दोलनकी जो लहर दक्षिणसे आयी अुसीने अुत्तर भारतकी परिस्थितिके अनुरूप हिन्दू-मुसलमान दोनोंके लिअे अेक सामान्य भक्तिमार्गकी भी भावना कुछ लोगोंमें जमायी ।[1]........

आलोचनाके क्षेत्रके विस्तारके कारण आजकल आलोचक सभी प्रणालियोंको अपनाता हुआ संपूर्ण तत्वोंको ग्रहण करता है और अपनी रुचि-वैशिष्ट्यके कारण कभी-कभी किसी अेक तत्वको अपनी आलोचनामें अधिक महत्व दे देता है । कहनेका तात्पर्य यह कि साहित्यमें आलोचक तथा आलोचना ग्रंथों और साहित्यकी आवश्यकता है, और रहेगी । आलोचना या आलोचक कलाकारोंका मित्र है, शत्रु नहीं । वह साहित्यकारका पथ-प्रदर्शन करता है, कमजोरियोंकी ओर संकेत करता हुआ साहित्यकी आवश्यकताओंको भी बताता है । वह कलाको अधिक अर्थ-पूर्ण बनाता है और कभी-कभी कलाके अैसे-अैसे चमत्कारोंको सामने लाता है जो संभवतः कलाकारको स्वप्नमें भी न सूझे हों ।

---

[1] 'हिन्दी साहित्यका अितिहास'—रामचन्द्र शुक्ल

सूचनिका (रिपोर्ताज)

रिपोर्ताज-- शब्द वास्तवमें फ्राँसीसी भाषाका है और बहुतसे और शब्दोंकी ही तरह हिन्दीमें आया है। अिसे हम अंग्रेजीके 'रिपोर्ट' शब्दका समानार्थी या पर्यायवाची शब्द मान सकते हैं। हिन्दीकी सर्वसाधारण ग्रामीणोंकी बोलचालमें अिसे ही 'रपट' कहते हैं। थानेमें 'रपट' लिखानेवाला अुसमें अपनी ओरसे अितनी बातें मिला देता है कि वास्तविक बात या सच्ची बात प्रायः छिप-सी जाती है। अखबारोंके लिअे जो रिपोर्ट लिखी जाती है अुसमें यद्यपि सर्वांशमें असत्य तो नहीं होता फिर भी जिस रूपमें वह पाठकके सामने रखी जाती है अुसमें काफी चटपटापन होता है। यदि अैसा न हो तो लोग अखबार पढ़ना छोड़ ही दें। पर रिपोर्ताजका अपना रूप अैसा नहीं होता। वह अिससे बहुत भिन्न है। साहित्यकी श्रेणीमें आजानेके कारण अुसमें सत्यं, शिवं, सुन्दरम्का समावेश हो जाता है।

किसी भी घटनाका अैसा वर्णन करना कि अुसमें निहित सत्य पाठकको सहजहीमें ज्ञात हो जाअे, रिपोर्ताज कहलाअेगा। यद्यपि अिसमें कल्पनाका भी आश्रय लिया जाता है, फिर भी अेक-मात्र कल्पनाके आधारपर ही कोअी सफल रिपोर्ताज-लेखक नहीं हो सकता। अिस कलाका विशेष प्रयोग, प्रचार अेवं विकास अिस महायुद्धमें हुआ। साहित्यका अिसे सबसे लचीला रूप

माना गया है। रिपोर्ताज दो पंक्तियोंका भी हो सकता है और कओी पृष्ठोंका भी। साहित्यके अिस अंगका विशेष संबंध पत्रकार-कलासे है। रिपोर्ताज लंबे नहीं होने चाहिअे। अधिक लंबे रिपोर्ताजको समाचार पत्रोंमें स्थान मिलना कठिन हो जाता है अतः घटनाका संक्षेपमें रोचक विवरण अुपस्थित करना ही रिपोर्ताजको रोचक अेवं अिष्टसिद्धिके अुपयुक्त बनानेकी कला है। अिसके लिअे कभी-कभी अुसे छोटी-मोटी कहानीका रूप भी दे दिया जाता है।

कहानी और रिपोर्ताजमें प्रधान अन्तर यह है कि कहानीमें अेक ही घटनाको प्रधान मानकर असके चारों ओर पात्रोंका चरित्र-चित्रण किया जाता है पर रिपोर्ताजमें अैसा नहीं होता। रिपोर्ताजमें कअी घटनाओंका समावेश करके भी अुनका सम्मिलित प्रभाव अुत्पन्न करनेका प्रयत्न किया जाता है। रिपोर्ताज-लेखकके सामने तो स्थानकी सबसे बड़ी समस्या होती है। अतः अुसके लिअे तो संक्षेपमें बहुत अधिक कहनेकी कलामें प्रवीण होना अत्यन्त आवश्यक है। साथ ही अुसे अिस बातके लिअे भी सजग रहना होता है कि वह घटनावलीका ठीक-ठीक और मार्मिक चित्र तो अुपस्थित कर रहा है न! रिपोर्ताज-लेखकको सफलता प्राप्त करनेके लिअे पत्रकार भी होना होता है और कलाकार भी। वह अपने चारों ओरके गतिशील जीवनकी वास्तविक घटनाओंका अितिहासकार है। अतः अुसके लिअे यह भी आवश्यक है कि वह अुसी बातपर लेखनी अुठाअे जिसे खुद अपनी आँखोंसे देख चुका हो और अुसकी सही जानकारी ले चुका हो।

घटनाओंका विवरण प्रस्तुत करते समय अुसे तीन बातोंका विशेष ध्यान रखना होता है——

१. अुसे अुस घटनाकी पूरी जानकारी होनी चाहिअे जिसका कि वह वर्णन कर रहा है।

२. वह घटनामें भाग लेनेवाले पात्रोंका, चाहे वे कल्पित हों या यथार्थ, बाहरी रेखा-चित्र अुपस्थित कर दे। और

३. रिपोर्ताज-लेखकको सजग व सचेष्ट होकर घटनामें निहित स्वार्थों तथा अुसके पात्रोंकी मानसिक गतिविधियोंका विश्लेषण करना चाहिअे।

अपने व्यक्तिगत स्वार्थोंसे ही नहीं वरन् सांसारिक स्वार्थोंसे अूपर अुठकर ही घटनाओंका सच्चा वर्णन किया जा सकता है। तभी यह कला निखर सकती है। सच्चा वर्णन करनेके लिअे घटनाओंको आँखोंसे देखना भी आवश्यक है अन्यथा फिर रिपोर्ट और रिपोर्ताजमें कोअी विशेष अन्तर नहीं रह जाअेगा। कभी-कभी जोखम अुठाकर प्राणोंकी बाजी लगाकर अुसे कठिनाअियोंके बीच जाकर स्थितिकी वास्तविकताका पता लगाना होता है।

कुछ हिन्दी लेखकोंने बंगालके अकालके समय, भारतीय-विभाजन और काश्मीरकी समस्याके अवसरपर वास्तविक घटनाओंका पता लगाकर सुन्दर रिपोर्ताजके रूपमें अुन्हें प्रस्तुत किया। अभी हिन्दीमें प्रकाशचन्द्र गुप्त, रांगेयराघव, प्रभाकर माचवे, हंसराज रहबर आदि बहुत थोड़े रिपोर्ताज लेखक हैं।

जीवनी और रेखाचित्र

जीवनी—अितिहास-साहित्यका अेक प्रसिद्ध अंग जीवनियोंका लिखा जाना है। जीवनी लिखनेकी परिपाटी पुरानी होती हुअी भी हिन्दीके लिअे अेकदम नयी है। वैसे देखा जाअे तो सारा साहित्य ही मनुष्यका अध्ययन है पर जीवनी, आत्म-कथा तथा संस्मरणोंमें वह अध्ययन सत्य और वास्तविकताकी कुछ अधिक गहरी छाप लेकर आता है। 'अितिहासके निर्माणकी जबसे मनुष्यको चिन्ता हुअी, तबसे ही जीवनी-निर्माणका युग भी प्रारंभ हुआ। जीवनी घटनाओंका अंकन नहीं वरन् चित्रण है।

साहित्य-शास्त्रियोंने जीवन-चरित्रोंके कअी प्रकार बताअे हैं पर अुनमेंसे जीवनी, आत्म-कथा और संस्मरण ये ही तीन प्रकार प्रधान रूपसे साहित्यमें प्रचलित हैं।

जीवनी कोअी दूसरा आदमी लिखता है, आत्म-कथा स्वयं लिखी जाती है और संस्मरणमें जीवनके किसी भी महत्वपूर्ण भाग या घटनाका अुल्लेख होता है।

आत्म-कथा—अिधर बहुत थोड़े दिनोंसे आत्म-कथा लिखनेकी परिपाटीसी चल पड़ी है। वास्तवमें अेक निश्छल अेवं निष्कपट व्यक्तिकी

आत्म-कथा हमें बहुत कुछ देनेवाली सिद्ध हो सकती है। अैसी आत्म-कथाका मुकाबला दूसरे द्वारा लिखी हुअी जीवनी नहीं कर सकती। कहनेका तात्पर्य यह कि साधारण जीवन-चरित्रसे आत्म-कथामें कुछ विशेषता होती है। आत्म-कथा लिखनेवाला जितना अपने विषयमें जानता है अुतना दूसरा क्या जान सकता है? परन्तु कभी-कभी अैसा भी होता है कि अपनी जो चीज दूसरेके ध्यानमें सरलतासे आ जाती है वह आत्म-गत होनेके कारण अपने ध्यानमें नहीं आ पाती। अतः अैसा होना भी संभव होता है कि आत्म-कथामें कहीं-कहीं तो आवश्यकतासे अधिक स्वयंकी प्रशंसाकी प्रवृत्ति दिखाअी देती है और कहीं-कहीं शील-संकोचवश ठीकसे जानकारी नहीं दी जाती।

आत्मकथाअें दो प्रकारसे लिखी जा सकती हैं– **१. श्रेणी संबद्ध और २. फुटकर निबंधोंके** रूपमें। संबद्ध रूपमें राजेंद्रबाबू तथा श्याम सुन्दर दासजीकी आत्म-कहानी और स्फुट निबंधोंके रूपमें बाबू गुलाबरायजीकी 'मेरी असफलताअें' अुल्लेखनीय हैं।

संस्मरण—हिन्दीमें संस्मरण लिखनेकी कलाका अभी प्रारंभ ही है। अपने जीवनकी बीती बातोंको वर्षों बाद याद करके लिखनेको संस्मरण कहते हैं। बनारसीदास चतुर्वेदी, आनंद कौसल्यायन, राहुलजी, कन्हैयालाल मिश्र, स्वामी सत्यदेव परिव्राजक आदि लोगोंने कुछ संस्मरण अवश्य लिखे हैं।

रेखा-चित्र—चित्रकार जिस तरह अपनी कूचीके सहारे कोअी चित्र बनाता है अुसी तरह साहित्यकार अपने शब्दों द्वारा किसी वस्तुका अैसा सजीव वर्णन करता है कि जिससे अुस वर्णित वस्तुका चित्र पाठकोंके सामने झूलने लगता है। वह जहाँ जो रंग भरना चाहता है, अपनी वर्णन-शक्तिके द्वारा वही रंग भर देता है। अतः अुसके शब्द अेवं अुनकी रचना अैसी सजीव होनी चाहिअे कि वह ठीक वही चित्र पाठकके सामने भी अुपस्थित करदे जो

लेखकके मनमें है। यह कोअी सरल कार्य नहीं है। यह भारी साधनाका कार्य है।

रेखा-चित्र या स्केच, निबन्ध और कहानीके बीचकी चीज हैं। अैसा कुछ लोगोंका मानना है, पर वास्तवमें रेखा-चित्र न निबन्ध है और न कहानी। अुसका अपना अलग ही अस्तित्व है। जिस आदमीको जीवनके विविध अनुभव नहीं हुअे, जिसने आँख खोलकर दुनियाको नहीं देखा, जो संसारके भले बुरे लोगोंके संपर्कमें नहीं आया, जिसने अेकांतमें बैठकर जिन्दगीके भिन्न-भिन्न प्रश्नोंपर विचार नहीं किया, वह भला क्या सजीव चित्रण करेगा ? अतः सजीव-चित्रण करनेकी शक्ति प्राप्त करनेके लिअे जीवनके विविध अनुभवोंकी नितान्त आवश्यकता है।

यही नहीं, जिस वस्तु अथवा व्यक्तिका चित्रण किया जाता है अुसका स्पष्ट चित्र पहले लेखकके अपने हृदयमें होना चाहिअे तभी वह अुसका सही वर्णन कर सकेगा। अिसमें वह वास्तविकता और कल्पना दोनोंका अुचित अुपयोग कर सकता है, करता है।

रेखा-चित्रमें जहाँ अेक ओर लेखकका, किसी व्यक्ति विशेष अथवा किसी वस्तु संबंधी अपना अध्ययन होता है वहाँ दूसरी ओर व्यक्ति अथवा वस्तु विशेषका वास्तविक चित्रण भी रहता है। साथ ही अुसमें अिस बातका भी अुल्लेख होता है कि वह लोगोंको अथवा अुसे कैसी लगती है।

जड़ वस्तुओंके अलावा रेखा-चित्र अैसे चेतन प्राणियोंपर भी लिखे जा सकते हैं जो बोल नहीं सकते पर अपनी भावनाओंको, सुख-दुखको अिशारोंके सहारे प्रगट करते हैं।

रेखा-चित्रका सबसे महत्वपूर्ण विषय है मनुष्य । व्यक्तिका रेखाचित्र अंकित करनेवाले लेखकका अुद्देश्य पाठकके सामने अपने अभीष्ट पात्रका अेक स्पष्टचित्र अंकित करना मात्र है ।

यद्यपि रेखा-चित्र, जीवनी और संस्मरणकी कलाका भेद अत्यंत सूक्ष्म है, फिर भी यह नितान्त सत्य है कि रेखा-चित्रकी कला जीवनी और संस्मरणकी कलासे बिलकुल भिन्न है ।



कुछ पठनीय पुस्तकें

१. साहित्यालोचन—	डॉ. श्यामसुन्दरदास
२. रूपक रहस्य—	,,
३. आलोचना अितिहास तथा सिद्धान्त—	डॉ. अेस. पी. खत्री
४. हिन्दी नाटच-चिन्तन—	श्री शिखरचन्द जैन
५. साहित्य-विवेचन—	श्री योगेन्द्रनाथ मल्लिक श्री क्षेमचन्द्र सुमन
६. साहित्यावलोकन—	श्री विनयमोहन शर्मा
७. सिद्धांत और अध्ययन—	श्री बाबू गुलाबराय अेम. अे.
८. हिन्दी कहानियोंकी शिल्प-विधिका विकास—	डॉ. लक्ष्मीनारायणलाल
९. हिन्दी अुपन्यास—	श्री प्रतापनारायण श्रीवास्तव
१०. रस गंगाधर—	श्री पुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी
११. विश्वसाहित्य—	श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी
१२. अेकांकी कला—	श्री प्रो. रामचरण महेन्द्र



प्र

र

सुग
हे
पूर्ण
अे

की